ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

दिसम्बर २०१५ Date of Printing = 05-12-15
प्रकाशन दिनांक= 05-12-15

वर्ष ४५ : अङ्क २
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : मार्गशीर्ष-पौष, २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- धर्मरक्षक कैसा हो २
- वेदोपदेश ३
- प्रेरणा दिवस ४
- वीर संन्यासी... ६
- वैदिक मन्त्रों के.... १४
- स्वामी दयानन्द... १६
- माई भगवती जी.. १९
- चन्द्र वसु क्यों है... २१
- आर्यो सम्भल जाओ... २३
- आदर्श माँ व पत्नी.... २४
- गृह्यसूत्रों की उपादेयता २६

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

धर्मरक्षक कैसा हो?

(डॉ0 विवेक आर्य)

एक बार प्रसिद्ध वैदिक अन्वेषक पंडित भगवत दत्त रिसर्च स्कॉलर जी ने महात्मा हंसराज से पूछा कि क्या कारण है जो मुगलों का राज विशेष रूप से आगरा-दिल्ली में केंद्रित था जबकि सीमांत नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान आदि उससे अत्यंत दूरी पर थे। फिर भी सीमांत प्रांत में रहने वाले हिन्दू अधिक संख्या में मुसलमान बन गए जबकि मुगलों की नाक के नीचे रहने वाले आगरा-मथुरा के हिन्दू न केवल चोटी-जनेऊ और अपने धर्मग्रंथों की रक्षा करते रहे अपितु समय-समय पर मुगलों का प्रतिरोध भी करते रहे और अंत तक हिन्दू ही बने रहे? महात्मा हंसराज ने गंभीर होते हुए इस प्रश्न का उत्तर दिया, इसका मूल कारण उत्तर भारत के हिन्दुओं का पवित्र आचरण था। एक अल्प शिक्षित हिन्दू भी सदाचारी, शाकाहारी, संयमी, धार्मिक, आस्तिक, ज्ञानी लोगों का मान करने वाला, दानी, ईश्वर-विश्वासी, पाप-पुण्य में भेद करने वाला और सद्विचार रखने वाला था। उन्हें अपना सर कटवाना मंजूर था मगर चोटी कटवानी मंजूर नहीं थी। उन्होंने जजिया कर देना मंजूर किया मगर इस्लाम मंजूर नहीं किया। उन्होंने पलायन करना मंजूर किया मगर मस्जिद जाना मंजूर नहीं किया। उन्होंने वेद, दर्शन और गीता के द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनना स्वीकार किया मगर कुरान पढ़ना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने गोरक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करना स्वीकार किया मगर गोमांस खाना स्वीकार नहीं किया। उन्होनें अपनी बेटियों को पैदा होते ही न चाहते हुए भी उनका बाल विवाह करना स्वीकार किया मगर मुसलमानों के हरम में भेजना अस्वीकार किया।"

यही सदाचार श्रेष्ठ आचरण जिसे हम "High Thinking Simple Living" के रूप में जानते हैं उनके जीवन का अभिन्न अंग था। यही सदाचार मुगलों से धर्मरक्षा करने का उनका प्रमुख साधन था। सीमांत प्रान्तवासियों ने इन उच्च आदर्शों का उतनी तन्मयता से पालन नहीं किया। इसलिए उनका बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन हो गया।

मित्रों! अपने चारों ओर देखिये। पश्चिमी सभ्यता और आधुनिकता के नाम पर आज हिन्दुओं की वर्तमान पीढ़ी को व्यभिचारी, नास्तिक, मांसाहारी, अधार्मिक, कुतर्की, शराबी, कबाबी, ईश्वर अविश्वासी, पाखंडी आदि बनाया जा रहा है। 90% से अधिक हिन्दू युवाओं की धर्मरक्षा के स्थान पर ऐश, लड़कियों, फैशन, शराब, सैर-सपाटे में रुचि है। इसीलिए चाहे गौ कटे, लव जिहाद हो, चाहे किसी हिन्दू का धर्म परिवर्तन हो। इन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता। ऐसे कमज़ोर कन्धों पर हिन्दू कितने दिन अपने धर्म की रक्षा कर पायेगा। इसलिए धर्मरक्षक बनने के लिए सदाचारी बनो। संयमी बनो। तभी प्रभावशाली धर्म रक्षक बन सकोगे।

वेदों में सदाचारी जीवन जीने के लिए ऋग्वेद 10/5/6 में ऋषियों ने सात अमर्यादाएँ बताई हैं। उनमें से जो एक को भी प्राप्त होता है, वह पापी है। ये अमर्यादाएँ हैं— चोरी करना, व्यभिचार करना, श्रेष्ठ जनों की हत्या करना, भ्रूण हत्या करना, सुरापान करना, दुष्ट कर्म को बार-बार करना और पाप करने के बाद छिपाने के लिए झूठ बोलना।

(यह प्रेरक प्रसंग धर्मरक्षा के लिए जीवन आहूत करने वाले वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोबिंद सिंह, बंदा बैरागी, वीर हकीकत राय, वीर गोकुला जाट, स्वामी दयानंद, पंडित लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, भक्त फूल सिंह सरीखे ज्ञात एवं अज्ञात उन हजारों महान आत्माओं को समर्पित है, जिनका बलिदान आज भी हमें प्रेरणा दे रहा है)।

❑❑

ओ३म्

> **वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द**

वेदोपदेश– हम यज्ञ के शोधित अन्नादि पदार्थों के खाने से नीरोग, बुद्धिमान, स्वस्थ, बलवान और दीर्घायु बन सकते हैं। संसार की समस्त पूजाओं में सर्वश्रेष्ठ पूजा देवयज्ञ है।

प्रजापतिः ऋषिः। प्राणादयः (स्पष्टम्) देवता। स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः किमर्थो होमो विधेय इत्याह॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका उपेदश किया जाता है॥

ओ३म्– प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा॥ (यजु० २२।२३)

पदार्थः–(प्राणाय) य आभ्यन्तराद् बहिर्निः सरति तस्मै **(स्वाहा)** योगयुक्ता क्रिया **(अपानाय)** यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति तस्मै **(स्वाहा)** **(व्यानाय)** यो विविधेष्वङ्गेष्वनिति=व्याप्नोति तस्मै **(स्वाहा)** वैद्यकविद्यायुक्ता वाक **(चक्षुषे)** चष्टे=पश्यति येन तस्मै **(स्वाहा)** प्रत्यक्षप्रमाणयुक्ता वाणी, **(श्रोत्राय)** श्रणोति येन तस्म **(स्वाहा)** आप्तोपदेशयुक्ता गीः **(वाचे)** वक्ति येन तस्मै **(स्वाहा)** सत्यभाषणादियुक्ता भारती **(मनसे)** मनन-निमित्ताय=संकल्प-विकल्पात्मने **(स्वाहा)** विचारयुक्ता वाणी॥

सपदार्थान्वयः–यैर्मनुष्यैः **(प्राणाय)** य आभ्यन्ता- राद् बहिर्निःसरति तस्मै **(स्वाहा)** योगयुक्ता क्रिया **(अपानाय)** यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति तस्मै **(व्यानाय)** यो विविधेष्वङ्गेष्वनिति=व्याप्नोति तस्मै **(स्वाहा)** वैद्यकविद्यायुक्ता वाक् **(चक्षुषे)** चष्टे = पश्यति येन तस्मै **(स्वाहा)** प्रत्यक्षप्रमाणयुक्ता वाणी **(श्रोत्राय)** श्रणोति येन तस्मै **(स्वाहा)** आप्तोपदेश- युक्ता गीः **(वाचे)** वक्ति यया तस्यै **(स्वाहा)** सत्यभाषणादियुक्ता भारती **(मनसे)** मननिर्मिताय- संकल्प-विकल्पात्मने **(स्वाहा)** विचारयुक्ता वाणी च प्रयुज्यते, ते विद्वांसो जायन्ते॥

भाषार्थ–जो मनुष्य **(प्राणाय)** अन्दर से बाहर निकलने वाले प्राण के लिए **(स्वाहा)** योगयुक्त क्रिया **(अपानाय)** बाहर से अन्दर जाने वाले अपान के लिए **(स्वाहा)** योगयुक्त क्रिया **(व्यानाय)** विविध अङ्गों में व्यापक व्यान के लिए **(स्वाहा)** वैद्यक- विद्या से युक्तवाणी **(चक्षुषे)** चष्टे=जिससे देखता है, उस नेत्र के लिए **(स्वाहा)** प्रत्यक्ष-प्रमाण से युक्त वाणी **(श्रोत्राय)** जिससे सुनाता है, उस कान के लिए **(स्वाहा)** आप्तोपदेश से युक्त वाणी **(वाचे)** जिससे बोलता है, उस वाणी के लिए **(स्वाहा)** सत्यभाषण आदि से युक्त वाणी और **(मनसे)** मनन के निमित्त एवं संकल्प-विकल्प आत्मक मन के लिए **(स्वाहा)** विचारयुक्त वाणी का प्रयोग करते है, वे विद्वान् बनते हैं।

भावार्थः–ये मनुष्याः यज्ञेन शोधितत्रनि जलौषधिवायु अन्नपत्रपुष्पफलरसकन्दादीन्यश्नन्ति तेऽरोगा भूत्वा प्रज्ञाबलरोग्यायुष्मन्तो जायन्ते॥

भावार्थः–जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये हुए जल-औषधि वायु, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस और कन्द आदि खाते हैं, वे नीरोग होकर बुद्धिमान्, बलवान्, आरोग्यवान् और आयुष्मान् होते हैं।

(**''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर''** से उद्धृत, **व्याख्याता–स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव**)

प्रेरणा दिवस - 23 दिसम्बर

(धर्मपाल आर्य)

23 दिसम्बर, 1926 का दिन हम सबके लिए प्रेरणा का दिन है। यह दिन हमें त्याग की, बलिदान की, यह दिन हमें अर्पण और समर्पण की, यह दिन हमें न्याय की और निडरता की, यह दिन हमें राष्ट्र रक्षा और संघर्ष की तथा यह दिन हमें राष्ट्र का गौरव बढ़ाने की और बचाने की प्रेरणा देता है। हमारे देश का इतिहास बलिदान की गौरवपूर्ण गाथाओं से भरा पड़ा है लेकिन जिसने शुद्धि आन्दोलन का सफलतापूर्वक सञ्चालन करते हुए, पाखंडियों से शास्त्रार्थ करते हुए, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आन्दोलन का सफल नेतृत्व करते हुए, गुरुकुलीय शिक्षा का प्रचार-प्रसार करते हुए तथा वेदों का प्रचार करते हुए अपना बलिदान कर दिया हो ऐसे अनुपम उदाहरण शायद ही मिलें। मुन्शीराम से महात्मा मुन्शीराम तथा महात्मा मुन्शीराम से बने स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान केवल एक गृहस्थी अथवा केवल एक संन्यासी का ही बलिदान मात्र नहीं था, अपितु वो बलिदान आजादी के आन्दोलन के सफल नेतृतवकर्त्ता का बलिदान था, वो बलिदान एक शुद्धि-आन्दोलन के सूत्रधार का बलिदान था, वो बलिदान सर्वमेध यज्ञ के कर्त्ता का बलिदान था, वो बलिदान आर्ष पाठविधि के एक सजग प्रहरी का बलिदान था, वो बलिदान गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के एक प्रबल पक्षधर का बलिदान था, वो बलिदान एक समाज सुधारक का बलिदान था, वो बलिदान एक सफल आचार्य का बलिदान था, वो बलिदान ऋषि दयानन्द के एक समर्पित सेवक का बलिदान था, वो बलिदान एक सफल पत्रकार व एक सफल लेखक का बलिदान था, वो बलिदान एक सफल पिता का बलिदान था, वो बलिदान शास्त्रार्थ समर में विजयी एक शास्त्रार्थ महारथी का बलिदान था, वो बलिदान वेदों के एक सफल प्रचारक व प्रसारक का बलिदान था, वो बलिदान कल्याण मार्ग पर सफलतापूर्वक चलने वाले पथिक का बलिदान था तथा वो बलिदान युवाओं के एक प्रेरणास्रोत का बलिदान था। आज उस हुतात्मा को बलिदान हुए 90 वर्ष हो गये हैं। इतने लम्बे समय के बाद भी आर्यों के हृदय में उस अमर बलिदानी के बलिदान की स्मृति ज्यों की त्यों समाई हुई है। आज भी अब्दुल रशीद की क्रूरता और सेवक धर्म सिंह व पं० धर्मपाल विद्यालंकार की स्वामी भक्ति और निर्भीकता आर्यों के अन्तःकरण में अंकित है। आज भी चांदनी चौक घण्टाघर के सामने गोरों की संगीनों के आगे निर्भीकता के साथ सीना अड़ाने का दृश्य सबके हृदय पटल पर छाया हुआ है। दिल्ली की जामा मस्जिद और उसकी मीनारें आज भी कल्याण मार्ग के पथिक द्वारा दिये गये वेदोपदेश की गवाही दे रही हैं। आज भी उनके द्वारा कहा हुआ एक अमर वाक्य आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के प्रति उनकी भावना तथा आर्य समाज के प्रति अगाध प्रेम को दर्शाता है- "**हम सबके कर्त्तव्य और मन्तव्य एक होने चाहिए। जो वैदिक धर्म के एक-एक सिद्धान्त के अनुकूल अपना जीवन नहीं ढाल लेगा; उसको उपदेशक बनने का साहस नहीं करना चाहिए। भाड़े के टट्टूओं से धर्म का प्रचार नहीं हो सकता। इस पवित्र कार्य के लिए स्वार्थ त्यागी पुरुषों की आवश्यकता है।**" स्वामी श्रद्धानन्द जी का पूरा जीवन प्रेरणाप्रद प्रसङ्गों से ओतप्रोत हैं। इस सीमित लेख में कौन से प्रसङ्गों को लिखूँ और कौन से प्रसङ्गों को छोड़ूँ? सन् 1856 ईस्वी (फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी संवत् 1913 विक्रमी) को एक कट्टर पुराण मतावलम्बी श्री नानक चन्द जी के घर एक बालक ने जन्म लिया जो कि बृहस्पति व मुंशीराम के नाम से जाना जाने लगा किन्तु बृहस्पति नाम कम और मुन्शीराम नाम अधिक प्रचलित हुआ। प्रारम्भिक विधिवत् शिक्षा यद्यपि काशी में एक हिन्दी पाठशाला में प्रारम्भ हुई तथापि पिता (श्री नानक चन्द) जी का स्थानान्तरण होने के साथ-साथ आपकी शिक्षा प्राप्ति के केन्द्र भी स्थानान्तरित होते रहे। परिणामतः आप युवावस्था में कई बुराइयों के

शिकार हो गये। आपके जीवन में इस प्रकार के दुःखद परिवर्तन को देखकर श्री नानक चन्द जी प्रायः चिन्तित रहते थे। गृहस्थाश्रम में प्रवेश के बाद भी जब मुन्शीराम की आदतों में कोई सुधार नहीं हुआ, तो नानक चन्द जी की चिन्ताओं का बढ़ना स्वाभाविक था किन्तु आखिर में नानक जी को चिन्ताओं के निदान का स्रोत मिल ही गया। शहर बरेली में जब नानक जी ने युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का हृदयग्राही वेदोपदेश सुना तो उससे अत्यधिक प्रभावित होकर अपने पुत्र (मुन्शीराम) को भी ऋषि का सान्निध्य प्राप्त करने की प्रेरणा दी। पिता के आदेश को मानकर जब युवा मुन्शीराम ने ऋषि जी का सारगर्भित वेदोपदेश सुना तो मुन्शीराम भी अत्यधिक प्रभावित हुए तथा ऋषि द्वारा किये गये उपदेश के अपने पर पड़े प्रभाव को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किया- **"मैंने बड़े-बड़े वक्ताओं के व्याख्यान सुने हैं, परन्तु जो ओज महर्षि की वाणी में था, वह अन्य कहीं नहीं पाया। उनके भाषण से श्रोताओं को जो प्रकाश मिलता है वैसा प्रकाश किसी अन्य वक्ता की वाणी से नहीं मिला।" भर्तृहरि ने ठीक ही तो लिखा है- "सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम।"** अर्थात् सत्सङ्गति मनुष्य का कौन-कौन सा हित नहीं सिद्ध करती अर्थात् सभी हितों को सिद्ध करती है। तभी तो मांसाहारी मुन्शीराम शाकाहारी मुन्शीराम बन गया, शराबी मुन्शीराम सदाचारी मुन्शीराम बन गया, रागी मुन्शीराम विरागी मुन्शीराम बन गया। मुन्शीराम के जीवन में अप्रत्याशित परिवर्तन राष्ट्र के लिए, समाज के लिए विशेषकर युवा पीढ़ी के लिए वरदान सिद्ध हुआ। मुन्शीराम पर जैसे ही ऋषि के विचारों का प्रभाव हुआ तुरन्त अपने जीवन को वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया। 31 अगस्त 1891 ईस्वी को मुन्शीराम जी की पत्नी श्रीमती शिवदेवी जी का देहान्त हो गया। उनके दो पुत्र और दो पुत्रियां थीं। लोगों ने उन पर पुनर्विवाह के लिए बहुत जोर डाला, उस समय उनकी आयु केवल 35 वर्ष की थी। पुनर्विवाह के प्रस्ताव को आपने दृढ़ता के साथ अस्वीकार करते हुए कहा- **"मैं अब तक इन बच्चों का पिता था; अब माता की कमी भी मैं ही पूरी करूंगा।"** 3 अप्रैल 1888 का वह दिन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं, जिसमें उन्हें अपनी बेटी द्वारा गाये गये ईसा-मसीह के गीत से आर्य कन्या पाठशाला खोलने की प्रेरणा मिली, जिसके परिणाम स्वरूप संवत् 1947 में आपने जालंधर में कन्या पाठशाला खोली जो कालान्तर में कन्या महाविद्यालय के नाम से जानी जाने लगी। शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी का अविस्मरणीय योगदान रहा है। गुरुकुल कांगड़ी इसका जीवन्त उदाहरण है, जिसकी स्थापना के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। इतिहस साक्षी है कि उनका तन-मन-धन सब कुछ समाज व राष्ट्र के लिए समर्पित था। महात्मा मुन्शीराम जी का जातपात में लेशमात्र भी विश्वास नहीं था। यही कारण था कि आपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह जात-पात के बन्धन से मुक्त होकर किये थे। गृहस्थ के सारे दायित्वों को सफलतापूर्वक निभाने के बाद आपने अपना बाकी जीवन आर्यराष्ट्र-निर्माण के लिए पूर्णतः समर्पित करने का निश्चय किया; अपने इसी निश्चय के तहत अप्रेल 1917 को आप महात्मा मुन्शीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन गये। संन्यास-आश्रम में प्रवेश करने के बाद पूरा राष्ट्र आपका परिवार बन गया; महर्षि दयानन्द सरस्वती का वैदिक उद्घोष "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अर्थात् ''सारे विश्व को आर्य बनाओ" आपका सपना बन गया। ऋषि के अभियान को सफल बनाने के लिए, स्त्री शूद्रों को शिक्षा का अधिकार दिलाने के लिए, दलितों के उद्धार के लिए, वेद के प्रचार-प्रसार के लिए, समस्त पाखण्डों व अन्ध विश्वासों को समूल नष्ट करने के लिए, समानता का पाठ पढ़ाने के लिए, अविद्या के अन्धकार को मिटाने के लिए जिस सफल सद्गृहस्थी ने, जिस सफल आचार्य ने, जिस शास्त्रार्थ समर विजयी ने, जिस सिद्धहस्त लेखक व पत्रकार ने तथा जिस ऋषि के समर्पित भक्त ने अपना जीवन बलिदान कर हमको निर्भीकता और निडरता का पाठ पढ़ा था ऐसे उदार, निर्भीक, क्रान्तिकारी बलिदानी और महादानी को समस्त आर्यजगत् की उनके अमर बलिदान दिवस पर विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

❑❑

वीर संन्यासी का बलिदान : कारण और प्रभाव

(राजेशार्य आट्टा)

जीवित न छोड़ा गुरुदेव दयानन्द जी को,
गूढ़ दुष्टता के कालकूट मिले क्षीर ने।
खाकर कटारी क्रूर कपटी नराधम की,
शोणित बहाया लेखराम के शरीर ने।
मृत्यु से मिलाया रुग्ण सिंह श्रद्धानन्द जी को,
गीदड़ की गोलियों के बेधन गम्भीर ने।
'शंकर' प्रहार वज्रघात झेल कायरों के,
प्राण नहीं त्यागे किस धीर धर्मवीर ने।।

प्रिय पाठकवृन्द! ऋषि दयानन्द ने देश को शारीरिक व मानसिक परतंत्रता से मुक्त कराने के लिए जो यज्ञ रचा था, उसमें सर्वप्रथम अपने जीवन की आहुति दी। अपने आचार्य द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तों के प्रचार व उनकी रक्षा के लिए आर्यवीरों ने सच्चे शिष्य बनकर यज्ञवेदी को प्रज्वलित रखा। मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी ने मृत्यु के मुख में जाने पर भी मांसाहार नहीं किया (1890 ई०)। चिरंजीवलाल ने अज्ञान तम में भटके हिन्दुओं को सन्मार्ग दर्शाने के कारण ऋषि की भांति विषपान कर अमरत्व प्राप्त किया (1893 ई०)। शुद्धि-यज्ञ के होता पं० लेखराम मतान्ध मुस्लिम की क्रूरता के कारण अमरपथ के पथिक बन गये (1897 ई०)। पं० तुलसीराम वैदिक मिशनरी भावना के कारण अहिंसा का प्रदर्शन करने वाले जैनियों की क्रूरता का शिकार बन गये। हुतात्मा रामरक्ख अण्डमान जेल में यज्ञोपवीत के लिए 92 दिन का अनशन कर वीरगति को प्राप्त हो गये (1919 ई०)। दलितोद्धार के कारण वीर रामचन्द्र रूढ़िवादी जाति अभिमानी राजपूतों की मूर्खता व निर्दयता के कारण कुर्बान हो गये (1923 ई०)।

अर्थात् जब आर्य समाज कार्यक्षेत्र में उतरा, तो उसे अपने-बेगाने सभी का अत्याचार झेलना पड़ा। जिस समय महात्मा गाँधी देश का राजनैतिक नेतृत्व कर रहे थे, उसी समय महात्मा मुंशीराम सामाजिक नेतृत्व कर रहे थे। दोनों में बड़ा प्रेम था, पर समय ने ऐसी चाल चली कि गाँधी जी राष्ट्रीय नेता बन गये और स्वामी जी पर साम्प्रदायिक बिल्ला लगा दिया गया, जिसने उन्हें बलिदान पथ का पथिक बना दिया। इस असमानता के कारणों पर विचार कर आगे बढ़ते हैं-

1. दक्षिण अफ्रीका के बोअर तथा जुलु युद्धों में अंग्रेजों की सहायता करने के कारण अंग्रेजों ने गाँधी जी को 1915 ई० में 'केसर-ए-हिन्द' का पदक दिया था। जबकि महात्मा मुन्शीराम ने गुरुकुल काँगड़ी में सरकारी (अंग्रेजी) पाठ्यक्रम लागू करने के बदले मिलने वाली सरकारी सहायता को ठुकरा दिया था।

2. गाँधी जी राजनीति के कारण प्रसिद्ध हुए। (सम्भवतः इसमें अंग्रेजों का हाथ हो, क्योंकि गाँधी जी का अहिंसा7अस्त्र अंग्रेजों की ढाल था) जबकि महात्मा मुंशीराम अपने त्याग-तपस्या से प्रसिद्ध हुए। महात्मा मुंशीराम लगभग 36 वर्ष की अवस्था में वानप्रस्थी और 60 वर्ष की अवस्था में संन्यासी (श्रद्धानन्द) बन गये, जबकि गाँधी जी अंतिम समय (78 वर्ष) तक गृहस्थी ही रहे। यद्यपि कस्तूरबा का देहान्त 1944 ई० में हो गया था।

3. गाँधी जी ने हिन्दुओं के साथ7साथ मुस्लिमों का भी पूज्य बनने के लिए सिद्धान्तहीनता (मुस्लिम तुष्टीकरण) का सहारा लिया, जबकि स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहते हुए जामा मस्जिद में वेदमंत्र बोलकर हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया।

4. गाँधी जी मुसलमानों को स्वतंत्रता संग्राम में सहयोगी बनाने के लिए उनकी हर उचित-अनुचित माँग मानकर उनकी अलगाववादी भावना को बढ़ाते रहे, जो पाकिस्तान लेकर भी शान्त नहीं हुई। जबकि स्वामी

श्रद्धानन्द खिलाफत आन्दोलन की असफलता से उत्पन्न भोपला विद्रोह (मालाबार) में मुस्लिमों द्वारा किये गये हिन्दुओं के कत्ले आम, आगजनी व धर्म-परिवर्तन को देखकर न केवल खिलाफत से अलग हुए, अपितु शुद्धि (मुस्लिमों को पुनः हिन्दू बनाना) और दलितोद्धार (दलितों का सामाजिक व आर्थिक शोषण बन्द कर समानता का अधिकार देना) को बढ़ावा देकर उन मुल्लाओं (मोहम्मद अली व शौकत अली) के सपनों पर पानी फेरने लगे, जो सात करोड़ दलितों को हिन्दू-मुस्लिम में आधा-आधा बाँटने की योजना बना रहे थे।

5. गाँधी जी देश को स्वतंत्र कराने के लिए बार-बार आन्दोलन चलाते थे, पर अंग्रेजों को मुसीबत में देखकर अपने आन्दोलन वापस ले लेते थे। अतः उनकी इस नीति के कारण लाला लाजपत राय, सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह, मोती लाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय जैसे क्रांतिकारी व अहिंसावादी भी उनसे अलग हो गये। यहाँ तक कि मोहम्मद अली जिन्ना जैसा राष्ट्रवादी व्यक्ति भी कट्टर अलगाववादी बन गया। जबकि स्वामी श्रद्धानन्द ने गहरे मतभेद होते हुए भी देश-धर्म के हितैषी लोगों (लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज आदि) को सदा साथ रखा। दलितोद्धार के प्रश्न पर कांग्रेस से मतभेद होने के कारण त्यागपत्र दे दिया, फिर भी कांग्रेस क

अधिवेशनों में अपना सन्देश भेजते रहे, ताकि दलितोद्धार कांग्रेस का विषय बन जाये और दलितों का जीवन स्तर ऊँचा उठे। बलिदान से एक दिन पहले (22 दिसम्बर 1926 ई०) भी स्वामी जी ने गोहाटी के कांग्रेस अधिवेशन में अपना सन्देश भेजा था- **'भारत का भावी सुख हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आश्रित है।'**

6. गाँधी जी पौराणिक धर्म की मान्यताओं (मूर्तिपूजा, जन्मना वर्ण-व्यवस्था आदि) को मानते थे, जबकि स्वामी जी वैदिक मान्यताओं (निराकार ईश्वर, कर्मणा वर्णव्यवस्था आदि) को मानते थे। बलिदान से कुछ दिन पहले कर्नाटक के एक साहित्यकार ने स्वामी जी को पत्र लिखकर पूछा था कि बाल विधवाएँ क्या सारा जीवन विधवा के रूप में बिताएँ अथवा इनका पुनर्विवाह होना चाहिए? स्वामी जी ने शास्त्रों का प्रमाण देकर इन्द्र जी (सुपुत्र) से उक्त सज्जन को उत्तर भेजा कि इनमें जो भी विवाह करना चाहें, उनका पुनर्विवाह होना चाहिए।

इससे पूर्व भी ऐसा ही पत्र उन्होंने गाँधी जी को लिखा था। गाँधी जी ने उत्तर दिया था कि ऐसी स्त्रियों को सदाचार पूर्वक जीवन बिताना चाहिए। जबकि स्वामी जी तो 1896 ई० से ही 'सद्धर्म प्रचारक' में बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह के समर्थन में दिल खोलकर लिखते रहे- "तुम्हारे पूर्वज कह गये हैं कि एक विधवा की आह एक इलाके को जला देने के लिए पर्याप्त है। यहाँ 25 लाख विधवाओं की आहें नित्य भारतवर्ष में उठकर इकट्ठी ताकत पकड़ती हुई अन्तरिक्ष में कोलाहल मचा रही हैं।" लेखमाला के अन्त में तो उन्होंने जैसे अपना कलेजा चीरकर ही रख दिया था- "मेरी दुःखियारी विधवा बहिनो, मैंने तुम्हारा दर्दनाक सन्देश भारत-सन्तान तक पहुँचा दिया है। काश कि मुझसे अधिक बेहतर फसीह (सुवक्ता) वकील तुम्हें मिलता।"

7. नेहरू के समाजवादी विचारों से गाँधी जी का सदा टकराव रहा, पर गाँधी जी ने उन्हें बिल्कुल नहीं छोड़ा और नेहरू गाँधीजी को सत्ता पाने की सीढ़ी मानता था, अतः साथ रहा। गाँधी जी ने भी अपने शिष्य को निराश नहीं होने दिया, इसके लिए चाहे राष्ट्र-हित की भी बलि देनी पड़ी। सरदार पटेल जैसे योग्य व लोकप्रिय व्यक्ति को पीछे हटाकर नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष (प्रधानमंत्री) बनाया, फिर भी उन्हें निराश होकर यह कहना पड़ा कि मेरी कोई नहीं सुनता।

जबकि स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल के हित को प्राथमिकता देकर अपने प्रेस, पुस्तकालय व कोठी भी गुरुकुल को दान कर दी। समाज के हित को देखते हुए पुत्र जैसे प्रिय गुरुकुल कांगड़ी को भी छोड़ दिया।

राष्ट्रहित की उपेक्षा (मुस्लिम तुष्टिकरण) होती दिखाई दी, तो उन्होंने कांग्रेस को भी छोड़ दिया। उन्हें हिन्दू धर्म का हित शुद्धि आन्दोलन में लगा, तो उसमें बाधक बनने वाले गाँधी जी को छोड़ दिया। जब देखा कि हिन्दू महासभा ठीक से काम नहीं कर रही है, तो उन्होंने उसे भी छोड़ दिया (24 जून, 1925 ई०)।

एक बार लाला हरदेव सहाय स्वामी जी से मिलने दिल्ली (बलिदान भवन) गये। स्वामी जी वहाँ अकेले थे। लालाजी ने कहा- **"पहले गाँधी जी आदि सब नेता आपके पास आया करते थे। आपको क्या मिला? आप अकेले पड़ गये (शुद्धि आन्दोलन के कारण)।" स्वामी जी लेटे हुए थे। झट से उठकर बैठ गए और बोले- "मैं अकेले कैसे? सत्य मेरे साथ, परमात्मा मेरे साथ। मैंने जो कुछ किया है देश व जाति की रक्षा के लिए किया है। कोई आए न आए, मुझे इसकी कतई चिन्ता नहीं। मेरा जीवन ईश्वर के अर्पण है।"**

8. गाँधी जी की हत्या स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक कट्टर हिन्दू द्वारा की गई थी, जबकि स्वामी जी की हत्या अंग्रेजी शासन में एक कट्टर मुस्लिम द्वारा की गई थी।

9. गाँधी जी की हत्या का कारण राष्ट्र-हित को बचाना बताया जाता है, जबकि स्वामी जी की हत्या का कारण मजहब की सुरक्षा था अथवा काफिर को मारकर जन्नत (स्वर्ग) पाना था।

10. गाँधी जी की हत्या के षड्यंत्र में एक-दो व्यक्ति ही शामिल रहे होंगे, जबकि स्वामी जी की हत्या में परोक्ष रूप से एक मजहब के वरिष्ठ लोग भी शामिल थे।

11. गाँधी जी की हत्या की आड़ में नेहरू सरकार द्वारा राजनैतिक स्वार्थ पूरा करने के लिए वीर सावरकर जैसे सच्चे देशभक्त भी हत्या के षड्यंत्र का आरोप लगाकर जेल में डाले गये और दो आरोपियों को फाँसी व तीन को आजीवन कारावास दिया गया। जबकि स्वामी जी के हत्यारे को ही फाँसी दी गई थी।

स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या - कारण

आर्य (हिन्दू) समाज के इस महान नेता की हत्या का मुख्य कारण धार्मिक ही था, पर उसके पीछे छिपे राजनैतिक कारण से भी इनकार नहीं किया जा सकता। जरा उसकी पृष्ठभूमि देखिये-

निस्सन्देह स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना देश को शिक्षा द्वारा स्वाभिमान जगाकर मानसिक गुलामी व छुआछूत का विरोध कर सामाजिक गुलामी से मुक्त कराने के लिए की थी, पर अंग्रेजी सरकार इस गुरुकुल से इतनी आतंकित थी कि समय-समय पर अंग्रेज अधिकारी गुरुकुल का दौरा करते ही रहते थे कि कहीं वहाँ बम तो नहीं बनाए जा रहे। 30 मार्च को 'रॉलेट एक्ट' के विरोध में जलूस का नेतृत्व करते हुए दिल्ली घण्टाघर में गोरों की संगीनों के सामने जिस साहस से स्वामी जी ने सीना ताना, उससे उनके यश को चार चाँद लग गए और 4 अप्रैल को जामा मस्जिद के मिम्बर से हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश देकर उन्होंने स्वयं को सच्चा राष्ट्रीय नेता सिद्ध कर दिया। जलियांवाला बाग हत्याकांड से सहमी कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन का सफलतापूर्वक संचालन करने के कारण स्वामी जी कांग्रेस के मुख्य नेता बन गये। इससे स्वार्थी नेताओं का कद घट गया और वे स्वामी जी के उभरते व्यक्तित्व को पीछे फेंकने का उपाय सोचने लगे।

कांग्रेस के प्रधान बने मौलाना मोहम्मद अली जब अछूत माने जाने वाले लगभग 7 करोड़ हिन्दुओं को हिन्दू-मुसलमान में आधा-आधा बाँटने के लिए तैयार बैठे थे, तो स्वामी श्रद्धानन्द ने इसका जोरदार विरोध कर दलितोद्धार सभा का गठन किया व करोड़ों व्यक्तियों को आर्थिक (बेगार प्रथा का विरोध कर) व सामाजिक (छुआछूत मिटाकर) सम्मान दिलाया। दलितोद्धार को स्वामीजी कांग्रेस का विषय बनाना चाहते थे, पर कांग्रेसी नेता इसके लिए तैयार नहीं हुए और मुस्लिम कांग्रेसी तो इससे तिलमिलाकर दलितोद्धार में

बाधा ही डालने लगे।

अंग्रेजों ने तुर्की के खलीफा का पद समाप्त कर दिया, तो भारत के मुसलमानों ने मौलाना मोहम्मद अली व शौकत अली के नेतृत्व में अंग्रेजों का विरोध करते हुए खिलाफत आन्दोलन चलाया। तिलक, मालवीय, एनी बेसेंट आदि के मना करने पर भी गाँधी जी ने खिलाफत का समर्थन किया, स्वामी जी व लाला लाजपत राय भी हिन्दू-मुस्लिम एकता की आशा से गाँधी जी के साथ चल पड़े। मार्च, 1920 में अली बन्धुओं के नेतृत्व में एक शिष्ट मण्डल इंग्लैण्ड गया, पर उसे निराशा हाथ लगी। तुर्की के खलीफा को बंदी बनाकर कुस्तुंतुनिया भेज दिया गया और मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में खलीफा के पद का उन्मूलन कर तुर्की में प्रजातंत्र स्थापित हो गया।

खिलाफत आन्दोलन में होने वाली असफलता की खीझ को मुस्लिम नेताओं ने हिन्दुओं पर अत्याचार कर मिटाया। मालाबार में 21 अगस्त, 1921 को मोपला मुसलमानों ने हजारों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया, सैकड़ों को कत्ल किया व उनके घरों को जलाया। महात्मा हंसराज के आदेश से महात्मा आनन्द स्वामी जी ने वहाँ जाकर पीड़ितों की सहायता व शुद्धि कार्य किया था। उन्होंने वे दो भयानक कुएं अपनी आँखों से देखे थे, जिनमें हिन्दू धर्मवीरों की गर्दन काटकर डाली गई थीं।

उसी तर्ज पर 1922-23 में मुल्तान तथा अन्य स्थानों पर भयानक उपद्रव हुए। इससे हिन्दुओं की अपार क्षति हुई। अब लालाजी व स्वामी जी खिलाफत का समर्थन करने की भूल पर पछताये। अहमदाबाद कांग्रेस की विषयनिर्धारिणी समिति में मालाबार के मोपलाकाण्ड की निन्दा का प्रस्ताव आने पर मौलाना हसरत मोहानी जैसे राष्ट्रीय मुसलमान ने भी जब उसका विरोध किया, तो स्वामी जी चौंक गये और उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए शुद्धि की आवश्यकता को अनुभव कर कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया (जनवरी 1923 ई०)। फरवरी, 1923 ई० में शुद्धि सभा की स्थापना कर सैकड़ों वर्ष पूर्व मुस्लिम बने लाखों खोजा, मैमन, मलकाने आदि मुसलमानों को भी पुनः हिन्दू धर्म में प्रवेश कराया। यह उनकी स्वेच्छा से पुराने घर में वापसी थी।

कांग्रेस ने 1923 ई० में हुए दंगों के कारणों को जानने के लिए मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक समिति बनाई। उनके सदस्यों में मौलाना अबुल कलाम आजाद भी थे। मोतीलाल नेहरू ने रिपोर्ट दी कि हिन्दू-मुस्लिम दंगों के कारण हैं- स्वामी श्रद्धानन्द।

28 मार्च 1924 ई० को 'यंग इण्डिया' में गाँधी जी ने बिना सोचे समझे आर्य समाज, ऋषि दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश व स्वामी श्रद्धानन्द आदि की खूब निन्दा की। उन लेखों ने मुसलमानों के अहं को बढ़ाया और आर्य समाज की छवि धूमिल कर दी। पं० चमूपति जैसे विद्वानों ने गाँधी जी की भ्रांति निवारण करने के लिए गाँधी जी को सैकड़ों पत्र लिखे। इससे गाँधी जी चौक गये और अपनी गलती का सुधार किया, पर मुस्लिम समाज पर तो पहली बात ही जम गई थी। अतः मतान्ध मुस्लिम स्वामी जी को फँसाने का मौका ढूँढने लगे।

दिल्ली में बकरीद पर गाय की कुर्बानी को लेकर बड़ा भयंकर दंगा हुआ। इसके प्रयश्चित रूप में गाँधी जी ने 21 दिन का उपवास रखा व कांग्रेस ने एकता सम्मेलन किया। लाला लाजपत राय के साथ स्वामी जी इसमें गये और आर्यसमाज पर किये गए आक्षेपों का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा- **"यदि मुसलमान प्रचारक यह घोषणा कर दें कि वे तबलीग (पंथ प्रवेश) बन्द कर देंगे, तो आर्य समाज भी समय और परिस्थिति को देखते हुए उतनी देर के लिए शुद्धि आन्दोलन को स्थगित करने पर विचार कर सकता है"**। इस पर कोई मुस्लिम नेता यह घोषणा करने के लिए तैयार नहीं हुआ और कांग्रेस के किसी भी नेता ने उन्हें यह कहने की हिम्मत नहीं दिखाई। अक्तूबर, 1924 ई० के इस सम्मेलन ने साम्प्रदायिक

मुस्लिमों के मन में यह अच्छी तरह बिठा दिया कि एकता भंग करने वाला आर्यसमाज का शुद्धि आन्दोलन है।

जून, 1926 में कराची से अपने पुत्रों (दो) व भतीजे के साथ दिल्ली आर्य समाज में आई एक मुस्लिम महिला असगरी बेगम ने हिन्दू धर्म स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की। उसकी शुद्धि कर शान्तिदेवी नाम रखा गया। बाद में उसका पति उसे वापस लेने आया, तो उसने जाने से मना कर दिया। स्थानीय मुस्लिमों से भड़काये जाने पर उसके पति ने स्वामी जी तथा 5 अन्य व्यक्तियों पर मुकदमा कर दिया। 6 महीने बाद (4 दिसम्बर) सब अभियुक्त बरी कर दिये गये।

मुकदमे के दौरान भी स्वामी जी के पास कई गुमनाम पत्र आये, जिनमें मारने की धमकी दी गई थी। उनके बेदाग छूट जाने पर तो सुलगी हुई आग और जोरों से भड़क उठी। स्वामी जी को खून करने की धमकियों के और भी गुमनाम पत्र आने लगे, पर स्वामी जी उन सबकी उपेक्षा करते रहे, क्योंकि धमकी से डरना उनके स्वभाव में नहीं था। हाँ, नया शरीर धारण कर शुद्धि कार्य को आगे बढ़ाने की इच्छा कई बार व्यक्त की थी।

इन दिनों स्वामी जी निमोनिया से पीड़ित थे। 23 दिसम्बर को एक युवक अब्दुल रशीद स्वामी जी से मिलने आया और बोला- स्वामी जी, मैं आपसे इस्लाम के मुतल्लिक कुछ गुफ्तगू करना चाहता हूँ। स्वामी जी ने कहा- भाई, मैं बीमार हूँ, तुम्हारी दुआ से राजी हो जाऊँगा तो बातचीत करूँगा।" पानी माँगने पर स्वामी जी के आदेश से सेवक धर्मसिंह ने उसे पानी पिलाया। पानी पीकर भीतर आते ही उस हत्यारे ने स्वामी जी पर पिस्तौल की दो गोलियाँ दाग दीं। लपक कर सेवक ने हत्यारे को पीछे से पकड़ा, इतने में उसने तीसरा फायर भी कर दिया। एक गोली धर्म सिंह की रान (जाँघ) में भी मार दी। इतने में धर्मपाल विद्यालंकार ने हत्यारे को दबोच लिया और पुलिस के आने तक (आधा घंटा) उसे दबाए रखा। हत्यारे पर मुकदमा चला और उसे फाँसी की सजा हुई।

प्रतिक्रिया- श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति ने 'मेरे पिता' में लिखा है- "अब्दुल रशीद ने उठकर चारों ओर देखा कि उसकी नजर डॉक्टर अन्सारी (स्वामी जी का बहुत ही प्रिय व श्रद्धालु डॉक्टर) पर पड़ी।.... वह डॉक्टर जी को देखकर मुस्कराया और काफी ऊचे स्वर से उसने कहा- "डाक्टर साहिब, आदाब अर्ज।".... बाद में तहकीकात करने पर मालूम हुआ कि अब्दुल रशीद ने अपने खूनी संकल्प की सूचना बहुत से प्रतिष्ठित मुसलमानों को दे रखी थी। उनमें से कुछ ने उसे रोका और कुछ ने प्रोत्साहित किया। डाक्टर साहब उनमें से थे, जिन्होंने उसे रोका था। वह कई महीनों से विधिपूर्वक नृशंसता की तैयारी कर रहा था। इस कार्य के समर्थन में उसने उलेमाओं का फतवा तक ले लिया था।

इतनी हल्की सी मुस्कराहट के पश्चात् अब्दुल रशीद के चेहरे पर एक गम्भीर मुर्दानी छा गई। वह उसके चेहरे का स्थायी भाव था, जो तब तक कायम रहा, जब तक वह जेल में फाँसी की रस्सी से झूलकर कर्मफल पाने के लिए बड़े दरबार में नहीं चला गया।"

पं० अयोध्या प्रसाद बी०ए० ने 'स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या' में लिखा है- "मौलाना आजाद ने कह दिया कि घातक (अब्दुल रशीद) पागल है और अदालत में उसे सचमुच पागल सिद्ध करने का यत्न किया गया है।... पर हत्या के पीछे की घटनाओं से यह साफ सिद्ध हो गया है कि अब्दुल रशीद की सहायता के लिए लगभग सारे मुसलमान हैं। वह हाईकोर्ट की प्रिविकौंसिल में उस पैरवी के लिए चंदा दे रहे हैं।... यदि स्वामीजी की हत्या एक मुसलमान के रोगी दिमाग का परिणाम होती, तो स्वामी जी की अरथी पर पत्थर न बरसाये जाते और न अभियुक्त अब्दुल रशीद को गाज़ी बनाकर उसकी तस्वीरें दिल्ली, इलाहाबाद और मद्रास के बाजारों में बेचने की कोशिश की जाती। बंगलोर के मि० रजबी

के यह कहने पर कि स्वामी श्रद्धानन्द का हत्यारा स्वर्ग में नहीं नरक में जावेगा। वहाँ के मुसलमानों ने पत्र द्वारा उनको यहाँ तक धमकी दी कि वे जब मरेंगे, उनको कबरिस्तान में नहीं गाड़ने दिया जावेगा। मेरठ में स्वामी जी की हत्या के दिन मुसलमानों ने रोशनी की। डॉ० सैफुद्दीन किचलू और मौ० मुहम्मद अली ने जामा मस्जिद में मुसलमानों से यह प्रार्थना करवाई थी कि अभियुक्त अब्दुल रशीद बेगुनाह साबित हो। अभियुक्त अब्दुल रशीद का जो बयान हत्या के दिन अखबारों में छपा है उसमें उसने यह कहा है कि **मैंने एक काफिर को मारा है और मैं बहिश्त में जाऊँगा।** मौ. मुहम्मद अली कहते हैं कि यह कोई बड़ा बहादुर है, जो इस दिलेरी से कहता है कि हाँ मैंने कत्ल किया है। कितने ही प्रसिद्ध लेखकों और नेताओं तक ने स्वामीजी को इस्लाम का शत्रु कहा था और उनकी हत्या करने वाला उनको मारकर अपने विचार में 'गाज़ी' बना है।" (हत्या का उद्देश्य बहिश्त पाना ही था-यह शिक्षा है!)

देश में जगह-जगह स्वामी जी की हत्या पर शोक सभाएँ हुईं, लोगों ने श्रद्धांजलि दीं। वीर सावरकर ने 'संन्यासी की हत्या का स्मरण रखो' नामक लेख में लिखा- "हिन्दू जाति के पतन से दिन-रात तिलमिलाने वाले हे महाभाग संन्यासी! तुम्हारा परम पावन रक्त बहाकर तुमने हम हिन्दुओं को संजीवनी दी है। तुम्हारा यह ऋण हिन्दू जाति आमरण न भूल सकेगी। किन्तु हे हिन्दुओ! ऋण का भार केवल स्मरण करने से कम नहीं होता है।... **हिन्दू समाज में अल्पकाल में सामाजिक क्रांति लाने वाले संन्यासी शंकाराचार्य के पश्चात् स्वामी** श्रद्धानन्द ही निकले।... हुतात्मा की राख से अधिक शक्तिशाली भस्म इस संसार में अन्य कोई होगा क्या? वही भस्म, हे हिन्दुओ! फिर से अपने भाल पर लगाकर संघटना (संगठन) और शुद्धि का प्रचार और प्रसार करो। और उस वीर संन्यासी की स्मृति और प्रेरणा हम सबके हृदयों में निरन्तर प्रज्वलित रहे, इसलिए उनका सन्देश सुनो।"

गाँधी जी ने 'यंग इंडिया' में लिखा- "मैं भाई अब्दुल रशीद नामक मुसलमान, जिसने श्रद्धानन्द की हत्या की है, का पक्ष लेकर कहना चाहता हूँ कि इस हत्या का दोष हमारा है। अब्दुल रशीद जिस धर्मोन्माद से पीड़ित था, उसका दायित्व हम लोगों पर है। द्वेषाग्नि भड़काने के लिए केवल मुसलमान ही नहीं, हिन्दू भी दोषी हैं।"

क्रांतिकारियों के बार-बार निवेदन करने पर भी उन्हें आतंकवादी कहने से न मानने वाले महात्मा द्वारा महान संन्यासी के हत्यारे के प्रति सहानुभूति दिखाने पर वीर सावरकर ने 20 जनवरी 1927 के 'श्रद्धानन्द' के अंक में लिखा- "गाँधी जी ने अपने को शुद्ध हृदय 'महात्मा' तथा निष्पक्ष सिद्ध करने के लिए एक मजहबी उन्मादी हत्यारे के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। वे स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसे राष्ट्रभक्त की हत्या के लिए उन्हीं की विचारधारा अर्थात् दृढ़हिन्दुत्वनिष्ठा तथा शुद्धि कार्य को जिम्मेदार सिद्ध करना चाहते हैं। मालाबार के मोपला हत्यारों के प्रति वे पहले ऐसी ही सहानुभूति दिखा चुके हैं।"

इसी समय वैदिक विद्वान् पं० देवेश्वर जी सिद्धान्तालंकार ने महात्मा गाँधी जी से सीधा पत्र-व्यवहार किया और उन्हें हत्यारे अब्दुल रशीद के प्रति सहानुभूति न दर्शाने का निवेदन किया, पर गाँधीजी अपनी हठ पर अड़े रहे। हत्यारे के प्रति गाँधीजी के करुणा भाव भी उसे फाँसी से नहीं बचा सके, पर गाँधीजी के लेखों से **सहानुभूति और प्रेरणा पाए लोगों ने कुछ महीने बाद ही (26 सितम्बर 1927) महाशय राजपाल को छुरा मार** दिया और तीसरी बार 6 अप्रैल 1929 को तो उन्हें शहीद कर ही दिया। आज की राजनीति में शायद इसे ही अहिंसा और भाईचारा कहा जाता है और दूसरे सम्प्रदाय के लोगों की हत्या कर जन्नत (स्वर्ग) पाना ही मजहबी शिक्षा है।

❑❑

वैदिक मन्त्रों के अर्थीकरण में ऋषि आदि का महत्व-2

(उत्ता नेरूर्कर, बंगलौर, मो. 09845058310)

मैं पिछले मास के विषय को ही इस लेख में आगे बढ़ा रही हूँ, और मन्त्रों के अर्थीकरण में ऋषि, छन्द व स्वर के महत्व के बारे में कुछ और तथ्य प्रस्तुत कर रही हूँ।

वेद मन्त्रों के ऋषि का अर्थ

पिछले मास के लेख में जो मैंने लिखा कि वेद-मन्त्रों का ऋषि उसका मन्त्रद्रष्टा नहीं, अपितु मन्त्र का अपर विषय है, इस तथ्य की पुष्टि के लिए कुछ और प्रमाण मैं यहाँ दे रही हूँ।

1) ऋग्वेद के दशम मण्डल के 108वें सूक्त में सरमा और पणियों की आख्यायिका प्राप्त होती है। यहाँ पणि व्यापार करने वाले बनिये हैं, और सरमा इन्द्र की दूती है। पणि धूर्त हैं, यह मन्त्रों से स्पष्ट हो जाता है, परन्तु यह भी प्रसिद्ध है कि सरमा इन्द्र की कुतिया है। यह तथ्य किसी भी मन्त्र से स्पष्ट नहीं होता। उसे दूती तो बताया गया है, यथा-

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि (ऋक्. 10/108/2) अर्थात् मैं इन्द्र की दूती बनकर विचर रही हूँ। पणि उसको बहुत धन, गौ, अश्व, आदि का उत्कोच देते हैं। इन सब से कुतिया का क्या काम? किसी स्त्री को यहाँ इन्द्र की दूती मानना बुद्धि-संगत लगता है, कुतिया का नहीं। तो यहाँ कुतिया की कल्पना कहाँ से आई? जब हम इस सूक्त के ऋषि को देखते हैं, तो कुछ मन्त्रों के ऋषि 'पणयोऽसुराः' हैं, और कुछ के 'सरमा देवशुनी', अर्थात् 'धूर्त पणिजन' और 'देवों की कुतिया सरमा'। अब स्पष्ट हो जाता है कि सरमा को कुतिया क्यों माना गया। यहाँ हम मन्त्र के ऋषि से मन्त्र के अर्थीकरण पर सीधा प्रभाव देखते हैं। दूसरी ओर से हमें यह भी सोचना चाहिए कि वे कौन ऋषि या ऋषिका होंगे जो अपना नाम 'पणयोऽसुराः' या 'सरमा देवशुनी' रखेंगे! जबकि प्राचीन काल में कर्ण आदि अति सरल और तुच्छ वस्तुओं पर तो मनुष्यों के नाम पाए जाते हैं, पर कुत्सित वस्तुओं पर नहीं। सो, यहाँ यह कल्पना करना कि ये नाम किसी/किन्हीं ऋषि/ऋषिकाओं के हैं, सर्वथा अमान्य प्रतीत होता है।

2) यजुर्वेद के बत्तीसवें अध्याय के 16 में से 12 मन्त्रों के ऋषि 'स्वयम्भु ब्रह्म' हैं। शेष 4 में से 3 के ऋषि 'मेधाकामः' हैं और एक के 'श्रीकामः'। 'मेधाकाम' वाले मन्त्रों में मेधा की ही कामना की गई है, यथा- **सनिं मेधामयासिषं स्वाहा।। 32/13।।, तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।। 32/14।।, मेधां मे वरुणो ददातु।। 32/15।।** 'श्रीकाम' वाले मन्त्र में श्री की कामना की गई है-

मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां।। 32/16।। यहाँ हम देख सकते हैं कि किस प्रकार ऋषिवाची शब्द मन्त्र के विषय को ही कह रहा है। इससे पूर्व के किसी भी मन्त्र में मेधा या श्री की कामना नहीं पाई जाती है।

इसी प्रकार सभी स्थलों पर हम ऋषि और मन्त्र-विषय में एक अटूट सम्बन्ध देख सकते हैं। इसलिए ऋषि को किसी व्यक्ति-विशेष का नाम न जानकर, हमें उसे, देवता के बाद, मन्त्र का दूसरा विषय जानना चाहिए।

अब विस्तार से विचार करते हैं छन्दों और स्वरों के अर्थों पर। पिछली बार मैंने दो मन्त्रों द्वारा कुछ अर्थ बताए थे। यहाँ मैं सम्पूर्णतया सबके अर्थ दे रही हूँ।

छन्दों के अर्थ

यहाँ हम केवल सात प्रधान छन्दों पर विचार करेंगे।

1) <u>गायत्री-</u> वेद कहता है- **पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दः (यजु० 14/10)**। महर्षि दयानन्द व्याख्या (म. व्या.) करते हैं- **पञ्चेन्द्रियाण्यवन्ति येन स विज्ञानम्-** जिससे पाँचों इन्द्रियों की रक्षा हो, वह विज्ञान। इससे ज्ञात होता है कि गायत्री मन्त्रों में पञ्च वस्तुओं की रक्षा का प्रकरण होना चाहिए, चाहे वे इन्द्रियाँ हो, चाहे कुछ और।

अन्यत्र हमें प्राप्त होता है- **या गायन्तं त्रायते सा (यजु. 14/18-म०व्या०), गायन्तं त्रायमाणा (यजु 23/33 म०व्या०),** अर्थात् वेदमन्त्र को गाने वाले की रक्षा करने वाला- गै शब्दे (भ्वादि) + त्रैङ् पालने (भ्वादि) + ङीप्, अथवा गै शब्दे (भ्वादि) + औणादिक अत्रन् + ङीप् प्रत्यय।

निरुक्त (7/12) कहता है- **गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः, त्रिगमना वा विपरीता, गायतो मुखादुत्पतदिति च ब्राह्मणम्।-** अर्थात् गायत्री 'गायति' से निष्पन्न होते हैं, जिसका अर्थ यहाँ स्तुति-परक है; अथवा वह 'त्रि + गम्' से बना है, जिसमें गम् और त्रि उलट कर 'गायत्री' बना (अर्थात् तीन पादों वाला); ब्राह्मण कहते हैं कि गान करते हुए परमात्मा के मुख से यह (सब से पूर्व - ऋग्वेद के पहले मन्त्र के रूप में) निकला - गै + पत् + रक् प्रत्यय - >गापत्र - गायत्री।

सो, जिस मन्त्र का छन्द गायत्री होगा, उसमें मनुष्य वा आत्मा की रक्षा करने का विज्ञान प्राप्त होगा और/अथवा परमात्मा की स्तुति होगी। यहाँ यह भी ज्ञात होता है कि ये छन्दोनाम भी अनेकार्थक हैं। कौन सा अर्थ किस मन्त्र में लगता है, यह विश्लेषण करना आवश्यक होता है।

2) **उष्णिक्-** वेद का प्रमाण है- **त्रिवत्सो वय उष्णिक् छन्दः (यजु० 14/10)- त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य सः पराक्रमम् यद् दुःखानि दहन्ति तम् (म० व्या०),** अर्थात् जिस पराक्रम के तीन - कर्म, उपासना और ज्ञान - बेटों के समान हैं और जो दुःखों को जला देता है। अन्यत्र महर्षि कहते हैं- **स्नेहनम् (यजु. 14/18)** - अर्थात् जिसमें प्रीति या स्नेह हो- उत् उपसर्ग + ष्णिह प्रीतौ (दिवादि), स्नेहने (चुरादि) च + क्विन्। उष्णिक् छन्द वाले मन्त्रों में तीन स्नेहपूर्वक उपदेश होने चाहिए।

निरुक्त कहता है- **उष्णिगुत्स्नाता भवति, स्निह्यतेर्वा स्यात् कान्तिकर्मणः, उष्णीषिणीवेत्यौपमिकम्। उष्णीषं स्नायतेः।-** अर्थात् उष्णिक् उत् + ष्णा शौचे (अदादि) + क्विन् से निष्पन्न हाता है (अत्यधिक शुद्ध); अथवा उत् + ष्णिह प्रीतौ (दिवादि), स्नेहने (चुरादि) वा + क्विन् - इच्छा के अर्थ में (अधिक प्रिय छन्द या स्नेह व्यक्त करने वाला); अथवा पगड़ी के समान गायत्री के प्रत्येक पाद में एक और अक्षर से लिपटा हुआ, यह उपमा के अर्थ में निर्वचन है (गायत्री के तीन पादों में आठ-आठ अक्षर होते हैं, और उष्णिक् में नौ-नौ)। स्ना धातु से उष्णीष निष्पन्न होता है- उत् + स्ना-> उष्णा->उष्णीष->उष्णिक्।

मुख्यतया प्रेम से इस छन्द का सम्बन्ध है।

3) **अनुष्टुप्-** वेद का प्रमाण है- **तुर्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः (यजु० 14/10) - तुर्यान् चतुरो वेदान् वहति येन सः, अनुस्तौति यया सा (म०व्या०),** अर्थात् जिससे चार वेदों का वहन हो, और जिससे किसी कर्म, ज्ञान आदि की पीछे स्तुति की जाए। अन्यत्र प्राप्त हाता है- **सुखानामनुष्टम्भनम् (म०व्या०यजु० 14/18)-** सुखों का आलम्बन करने वाला।

निरुक्त के अनुसार- **अनुष्टुबनुष्टोभनात्। गायत्रीमेव त्रिपदा सती चतुर्थेन पादेनानुष्टोभतीति च ब्राह्मणम्।-** ब्राह्मण के अनुसार गायत्री के तीन पाद होते हुए, चतुर्थ पाद के आलम्बन से 'अनुष्टुप् = गायत्री पर अवलम्बित' सिद्ध हाता है (गायत्री में 8-8 अक्षरों

के तीन पाद होते हैं, जबकि अनुष्टुप् में 8 अक्षरों के चार पाद होते हैं)। मेरे अनुसार, इसे 'ष्टुप समुच्छ्राये = उद्धार करना' से भी सिद्ध किया जा सकता है, जबकि इसका अर्थ बनेगा- मन्त्र में उपदिष्ट कर्म, ज्ञान वा उपासना, आदि से उद्धार करने वाला।

इस छन्द में प्रधानतया धर्म-विषय उपदेश होना चाहिए।

4. बृहती- यजु० 14/10 में सात छन्दों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- पङ्क्ति, जगती, त्रिष्टुप्, विराट्, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्। इनमें से छः तो हमारे वर्णन के अनुसार ही हैं, परन्तु बृहती के स्थान पर विराट् दिया है। सामान्य प्रयोग में, किसी भी छन्द में दो अक्षर कम होने पर उसे 'विराट्' विशेषण दिया जाता है, यथा- विराट् त्रिष्टुप्। इसलिए विराट् का यहाँ पढ़ा जाना विचित्र है। दूसरी ओर 'विराट्' और 'बृहती', दोनों के ही अर्थ 'बड़ा होना' होता है। क्या यह सम्भव है कि 'विराट्' का अर्थ यहाँ 'बृहती' हो? यदि ऐसा है, तो वेद कहता है-

दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः (यजु० 14/10)- दितिभिः खण्डनैर्निर्वृत्तान् यवादीन् वहति, प्रापणम् (म०व्या०)- पृथिवी के खोदने से उत्पन्न जौ आदि अन्नों को प्राप्त कराने वाला, विविध प्रकाशयुक्त (हिन्दी व्याख्या)। पहला अर्थ तो यहाँ सही नहीं बैठता। सो, प्रकाश-वाहक अर्थ करना ही यहाँ सही है। अन्यत्र प्राप्त होता है- **महती प्रकृतिः (म० व्या० यजु० 14/18), महदर्था** (यजु० 23/33 म०व्या०)- अर्थात् महान् प्रकृति, या केवल महान् अर्थ में। निरुक्त कहता है- बृहती परिबर्हणात्- चारों ओर से बड़ा होने से- बृह वृद्धौ (भ्वादि)। अनुष्टुप् के हर पाद से एक अक्षर से बड़ा होने से यह अर्थ सम्भव है, परन्तु मन्त्रार्थ में, इस छन्द से महान् वस्तुओं, विशेषकर प्रकृति-सम्बन्धी, का उल्लेख होना चाहिए।

5) पङ्क्ति- वेद कहता है- **अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दः (यजु० 14/10)- वृषभः बलम्- गौ या बैल के समान बलवान् हो के तु प्रकट स्वतन्त्र हो** (म० व्या०)- यः अनसा प्राणेन वायुना युक्तः सः अनड्वान् (अन प्राणने + औणादिक असुन् प्रत्ययः)।

अन्यत्र हम पाते हैं- **पञ्चावयवो योगः (म० व्या० यजु. 14/18), विस्तृतया क्रियया (यजु० 23/33), पङ्क्ति पञ्चपदा (निरु० 7/12)**- अर्थात् पाँच अवयवों वाला, विस्तृत क्रिया को कहने वाला, या पाँच पादों वाला। पचि व्यक्तिकरणे (भ्वादि), विस्तारवचने (चुरादि) वा + क्तिन् प्रत्ययः से इसके अर्थ किसी रहस्य का उद्घाटन करने वाला या विस्तार से कहने वाला भी होता है।

अतः, जहाँ एक ओर पाँच पादों के होने से इस छन्द का यह नाम है, वहीं मन्त्र में क्रिया, बल, वायु, प्राण आदि का विस्तृत विवरण मिलना चाहिए।

6) त्रिष्टुप्- वेद कहता है- **त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो (यजु० 14/10) - त्रयोऽव्यादयो यस्मात् तं, प्रजननं, त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि स्तुवन्ति यया सा** (म० व्या०)- जिससे तीन रक्षकों का वर्णन हो, या जिससे तीन कर्म, उपासना और ज्ञान की स्तुति की जाए, अर्थात् जिसमें तीन उपदेश या स्तुति हों। अन्यत्र हम पाते हैं- **सुखानि स्तोभति सा (म० व्या० यजु० 14/18)**- जिससे तीन सुखों का आलम्बन हो; **त्रिष्टुप् स्तोभत्युत्तरपदा। का तु त्रिता स्यात्? तीर्णतमं छन्दः, त्रिवृद्वज्रस्तस्य स्तोभतीति वा। यस्त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभस्त्रिष्टुपत्वमिति विज्ञायते (निरु० 7/12)**- त्रिष्टुप् का उत्तरपद 'ष्टुप्' स्तुभ् धातु से बना है। 'त्रि' के दो अर्थ हैं- एक तो 'तृ प्लवनसन्तरणयोः' से विस्तृत अर्थ में, और दूसरा, तीन परतों वाला होना, अर्थात् जिससे तीन (प्रकार से या तीन पदार्थों) का स्वतन हो,

वह त्रिष्टुप् का त्रिष्टुपत्व है।

मेरे अनुसार, 'ष्टुप समुच्छ्राये = उद्धार करना' का यहाँ भी अर्थ सम्यक् बैठता है। सो, त्रिष्टुप् छन्द वाले मन्त्र में तीन स्तुतियाँ या तीन उद्धार/रक्षण करने वाले उपदेश पाए जाने चाहिए।

7) जगती- वेद का प्रमाण हैं- **धेनुर्वयो जगती छन्दः (यजु० 14/10)- दुग्धप्रदा कामना, जगदुपकारकम् (म०व्या०)**- धेनु के समान कामनाओं को दुहने वाला या जगत् का उपकार करने वाला। अन्यत्र पाते हैं- **गच्छति सर्वं जगद्यस्यां सा (म०व्या० यजु० 14/18)**- जिसमें सारा जगत् प्राप्त हो; **जगती गततमं छन्दः, जलचरगतिर्वा, जल्गल्यमानोऽसृजदिति च ब्राह्मणम् (निरु० 7/12)**- जगती सबसे अधिक प्रापक छन्द है (गम् + गम् + अति + ङीप्), या उसकी जलचर के समान ऊपर-नीची गति है (जलचरगति ->जगति ->जगती), अथवा ब्राह्मण के अनुसार सबसे अधिक स्तुति किए हुए परमेश्वर ने इसका सृजन किया हैं। (गृ+गृ+क्विप्+ङीप्->जगर् ई->जगती)।

वस्तुतः, इस छन्द में, व्यक्तिविशेष के लिए नहीं, अपितु सब जगत् के लिए सन्देश होता है।

छन्दों के विश्लेषण के बाद, अब हम स्वरों के सम्भावित अर्थों पर एक दृष्टि दौड़ाते हैं। यहाँ मुझे कोई प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ। अतः, ये मेरी बुद्धि से ही दे रही हूँ।

स्वरों के अर्थ

1. **षड्जः** - यह छः से उत्पन्न होता है (षड् + जनी प्रादुर्भावे दिवादि)), अर्थात् इसके मन्त्र में छः उपदेश, या छः स्तुतियाँ होनी चाहिए। यथा- गायत्री मन्त्र में स्तुतियाँ हैं- भूः, भुवः, स्वः, सविता, भर्गः देवः।

2. **ऋषभः**- शक्तिशाली, बल का उपदेश करने वाला (ऋषी गतौ (तुदादि) + औणादिक अभच् प्रत्यय)।

3. **गान्धारः**- गो, अर्थात् वाणी, पृथिवी या इन्द्रिय को धारण करवाने वाला। गान्धर्वी वाङ्नाम (निघ० 1/11) निरुक्त में 'गो' के अन्य भी कई अर्थ दिए हैं सम्भव है कि उनका भी किन्हीं मन्त्रों में संयोग होता हो।

4. **मध्यमः**- मध्य-स्थिति का उपदेश करने वाला।

5. **पञ्चमः**- किसी अतीन्द्रिय रहस्य को व्यक्त करने वाला। (पचि व्यक्तिकरणे (भ्वादि) औणादिकः कनिन् प्रत्ययः, अथवा पञ्चन् प्रातिपदिक + मडागमः + डट् प्रत्ययः)

6. **धैवतः**- ज्ञान या धारणा-शक्ति विषयक (ध्यैचिन्तायाम् (भ्वादि) + क्विप् + ङीप् + मतुप्। **धीः कर्मनाम् (निघं० 2/1), प्रज्ञानाम् (निघं० 3/9), वाग् वै धीः (शतपथ. 4/2/4/13))**।

7. **निषादः**- उपासना-सम्बन्धी (नि + षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु (भ्वादि) + अण्)। **निषादः कस्मान्निशदनो भवति, निषण्णम्स्मिन् पापकमिति निरुक्ताः (निरु० 3/7)**- यहाँ धर्म-विनाशक, पापी का अर्थ लिया गया है जो कि प्रसंगानुसार सम्यक् नहीं है; **नितरां स्थापयन्तो विज्ञापयन्तो वा (देवाः विद्वांसो जनाः) (म०व्या० ऋ० 3/19/5)**- पूरी तरह स्थापित करने वाले या जनाने वाला। यह भी अर्थ सम्भव है।

संस्कृत में कोई भी शब्द निरर्थक नहीं होता। तो फिर वेदों में कैसे कोई शब्द अर्थहीन हो सकता है? हमारी समझ में कमी हो सकती है, परन्तु वेद की रचना में नहीं। मेरे उपरिनिर्दिष्ट अर्थ अवश्य ही त्रुटिपूर्ण हो सकते हैं, परन्तु इस दिशा में विचार करना, ऊपर दिए अर्थों का मन्त्रों के साथ परीक्षण करना और सही अर्थ स्थापित करना वेदज्ञों के लिए आवश्यक है, ऐसा मैं समझती हूँ।

❑❑

'स्वामी दयानन्द अपूर्व सिद्ध योगी व पूर्ण वैदिक ज्ञान से संपन्न महापुरुष थे'

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो.- 09412985121)

महर्षि दयानन्द जी के समग्र जीवन पर दृष्टि डालने से यह तथ्य सामने आता है कि वह एक सिद्ध योगी तथा आध्यात्मिक ज्ञान से सम्पन्न वेदज्ञ महात्मा और महापुरुष थे। अन्य अनेक गुण और विशेषतायें भी उनके जीवन में थीं, जो महाभारतकाल के बाद उत्पन्न हुए संसार के अन्य मनुष्यों में नहीं पायी जातीं। वस्तुतः यह दोनों उपलब्धियाँ ही उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य बनी थीं। आरम्भ में तो उन्हें पता नहीं था कि जिस उद्देश्य के लिए वह अपना घर व माता पिता का त्याग कर रहे हैं, उसका परिणाम क्या होगा? उन्होंने सच्चे शिव संबंधी ज्ञान की प्राप्ति और मृत्यु पर विजय पाने को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। उन्हें इस बात का आभास था कि सच्चे योगियों से ही उनके मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं। इसलिए हम पाते हैं कि घर से चलकर वह विद्या प्राप्ति में निपुणता प्राप्त होने तक ज्ञानियों व योगियों की ही संगति में देश भर में सभी सम्भावित स्थानों पर खोज करते रहे। उनका यह गुण था कि अपने लक्ष्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित उन्हें जहाँ जिससे जितना भी ज्ञान मिलता था, उसे वह प्राप्त कर लेते थे और उससे आगे के लिए अन्य सम्भावित स्थानों की ओर चल पड़ते थे।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने जीवन के लक्ष्य की पूर्ति में सहायता के लिए शीघ्र ही ब्रह्मचर्य की दीक्षा व उसके बाद संन्यास ले लिया था। उन्होंने अपने जीवन का पर्याप्त समय गुजरात के प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थों, मध्यप्रदेश के नर्मदा तट व नर्मदा के स्रोत अमरकण्टक, राजस्थान के आबू पर्वत सहित उत्तराखण्ड के वन व पर्वतों पर जाकर सिद्ध योगियों व ज्ञानियों की खोज में लगाया था। गुजरात की चाणोदकन्याली में उन्हें योगी ज्वालापुरी और शिवानन्द गिरी मिले जिनसे उन्हें योग के अनेक सूक्ष्म रहस्यों का ज्ञान हुआ। उन्होंने इन योग प्रवीण गुरुओं के निर्देशन में योग का सफल अभ्यास भी किया था। इसके बाद अहमदाबाद व आबूपर्वत जाकर भी उन्होंने योगाभ्यास किया और यहाँ भी उन्हें योगशिक्षा के अनेक गुप्त व सूक्ष्म महत्वपूर्ण रहस्यों का ज्ञान हुआ। स्वामी दयानन्द जी ने अपने गृह पर रहकर 21 वर्ष की अवस्था तक अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अतः यात्रा में जहाँ कहीं उन्हें कोई ग्रन्थ मिलता था, तो वह उसको प्राप्त कर उसका अध्ययन करते थे। ज्ञान के अनुसंधान के लिए योगियों व महात्माओं से मिलना और साहित्यिक शोध के प्रति उनकी बुद्धि बड़ी प्रबल थी। पुस्तकों में जो लिखा है, वह सत्य और प्रमाणित है या नहीं, इसकी वह परीक्षा किया करते थे। उनके पास कुछ तन्त्र ग्रन्थ थे। उनमें शरीर के भीतर जिन चक्रों का वर्णन था, एक बार अवसर मिलने पर नदी में बह रहे शव को बाहर निकाल कर तथा अपने चाकू से उसे चीरकर, उसका पुस्तक के वर्णन से उन्होंने मिलान किया था। जब वह वर्णन सहीं नहीं पाया, तो उन ग्रन्थों को भी उन्होंने उस शव के साथ बांध कर नदी में बहा दिया था। इससे सत्य की खोज के प्रति उनके दृढ़ संकल्प के दर्शन होते हैं। इस पूरे वर्णन से स्वामी दयानन्द जी का योग में प्रवीण हो जाने और उसके प्रायः सभी रहस्यों को जीवन में प्राप्त कर लेने का तो अनुभव होता है परन्तु ज्ञान प्राप्ति की उनकी आगे की यात्रा अभी बाकी थी। यहाँ हमें इस तथ्य के भी दर्शन हो रहे हैं कि कोई भी सफल योगी साँसारिक ज्ञान, विज्ञान व वेदों के ज्ञान से सम्पन्न नहीं हो जाता जैसा कि कई लोग दावा करते है कि योग में निष्णात हो जाने पर सभी ज्ञान योगी को स्वतः सुलभ हो जाते हैं और उसे ज्ञानप्राप्ति करना शेष नहीं रहता।

स्वामी दयानन्द जी में ज्ञान प्राप्ति की भी तीव्र अभिलाषा व इच्छा थी। इसकी प्राप्ति का स्थान भी वह बड़े ज्ञानी योगियों को ही मानते हैं। अतः योग में पूर्णता प्राप्त कर लेने पर भी उनकी ज्ञान की पिपासा

को शान्त करने के प्रयत्न जारी रहे। इसके लिए गुजरात के धार्मिक व तीर्थस्थलों, नर्मदा तट व उसके उद्गम तथा राजस्थान के आबू पर्वत की तो पूर्णता से छानबीन कर चुके थे, अब उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति के लिए उत्तराखण्ड के हरिद्वार, ऋषिकेश और वन पर्वतों के शिखरों सहित कन्दराओं व तीर्थ स्थानों में ज्ञानी योगियों के मिलने की सम्भावना थी। वह इस ओर बढ़े और अभीष्ट का अनुसंधान करने लगे। अनुसंधान करने में यहाँ उन्हें भीषण कष्ट हुए परन्तु कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। इसके कुछ काल बाद सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में सारा देश किसी न किसी रूप में संघर्षरत रहा। इसके बाद स्थिति कुछ सामान्य होने पर सन् 1860 मे स्वामी दयानन्द जी मथुरा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी की पाठशाला में ज्ञान की प्राप्ति हेतु पहुँचते हैं। यहां स्वामी जी को अपने निवास, पुस्तकों के क्रय एवं भोजन आदि की समस्याओं के निवारण में कुछ समय लगता है। इसके बाद उनका अध्ययन आरम्भ होकर 3 वर्ष तक चलता है। स्वामीजी गुरु विरजानन्द जी की शिक्षा से उस ज्ञान को प्राप्त करते हैं, जिसकी उन्हें तीव्र अभिलाषा थी और जिसके लिए उन्होंने अपने माता-पिता व घर का त्याग किया था। गुरु दक्षिणा का अवसर आता है। स्वामी जी गुरु जी को प्रिय कुछ लौंग लेकर पहुँचते हैं। दोनों के बीच बातचीत होती है। गुरुजी स्वामी जी को मिथ्या अज्ञान व अन्धविश्वास दूर कर वैदिक ज्ञान का प्रकाश करने को कहते हैं। स्वामी दयानन्द जी भी अपने लिए इस कार्य को सर्वोत्तम व उचित पाते हैं। अतः गुरु विरजानन्द जी की प्रेरणा, परामर्श व आज्ञा को स्वीकार कर उन्हें इस कार्य को करने का वचन देते हैं। हमें लगता है कि स्वामी जी यदि यह कार्य न करते, तो उनकी योग्यता के अनुरुप उनके पास करने के लिए दूसरा कोई कार्य भी नहीं था। अभी तक स्वामी दयानन्द जी ने योग तथा आर्ष विद्या के क्षेत्र में जो ज्ञान की उपलब्धि की व अनुभव प्राप्त किये, उससे सारा संसार अपरिचित था। सन् 1863 में वह कार्य क्षेत्र में आते हैं

धीरे-धीरे वह अन्धविश्वासों का निवारण और वेदों के प्रचार-प्रसार करने में सफलताओं को प्राप्त करना आरम्भ कर देते हैं। इन कार्यों में पूर्णता तब दृष्टिगोचल होती है, जब वह नवम्बर, 1869 में काशी में पूरी पौराणिक विद्वतमण्डली के साथ मूर्तिपूजा को वेद शास्त्रानुकूल सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ करते हैं और अपने सिद्धान्त कि "मूर्तिपजा वेद व शास्त्र सम्मत नही है" में सफल व विजयी होते हैं।

स्वामी दयानन्द जी और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द जी दोनों ही देश की धर्मिक व सामाजिक पतनावस्था से चिन्तित थे। दोनों ने ही इसके कारणों व समाधान पर विचार किया था। इसका निष्कर्ष यह था कि अवैदिक, पौराणिक व मिथ्या ज्ञान तथा आपस की फूट के कारण देश की यह दुर्दशा हुई है और इस समस्या पर विजय पाने का एक ही उपाय है कि सत्य और असत्य के यथार्थ स्वरूप का प्रचार कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराया जाये। स्वामी जी ने गुरु विरजानन्द जी से ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति, धर्ग व जीवन शैली के सम्बन्ध में वेदों में निहित सत्य ज्ञान को ही प्राप्त किया था। उन्होंने मथुरा में गुरुजी से विदा लेने के बाद अपने आपको इस महत्कार्य के लिए तैयार किया था। उनके पास सभी विषयों के सभी प्रकार के प्रश्नों के सत्य उत्तर थे। उनका अपना जीवन भी सत्य के लिए साक्षात् उदाहरण था। उन्होंने मनुस्मृति जैसे प्रमुख ग्रन्थ में विद्यमान लाभकारी सत्यासत्य की कसौटी पर कस कर वेदानुकूल भाग को भी प्राप्त किया था, जिसका इससे पूर्व किसी ने इस प्रकार से अध्ययन नहीं किया था। उनके समय तक के विद्वान् पूरी मनुस्मृति को या तो स्वीकार करने वाले थे या अस्वीकार करने वाले। परन्तु इसके सत्य व लोकहितकारी ज्ञान को स्वीकार व उसमें प्रक्षिप्त वेद विरुद्ध, असत्य व मिथ्या ज्ञान वाले अंश को त्यागने की दृष्टि रखने वाले विद्वान् नहीं थे। इस दृष्टि को रखने वाले स्वामी दयानन्द पहले विद्वान् थे। स्वामी दयानन्द जी ने अपने समग्र ज्ञान के आधार पर देश का भ्रमण आरम्भ कर दिया। पूना पहुँच कर उन्होंने प्रवचनों से वहाँ के प्रबुद्ध समाज को अपनी बातों का लोहा मनवाया। मुम्बई में उनके प्रवचनों से लोग प्रभावित हुए। उन्हें सन् 1874 में वैदिक विचारों का वर्तमान व

भविष्य काल में तथा उनके सम्पर्क में न आने वाले लोगों तक उनकी सभी बातें पहुँच जायें व पहुँचती रहें, इसका एक ग्रन्थ तैयार करने का प्रस्ताव मिला जिसे उन्होंने विश्व का अनूठा ग्रन्थ **"सत्यार्थ प्रकाश"** लिख कर पूरा किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुम्बई के प्रबुद्ध लोगों ने उन्हें एक संगठन बनाने का सुझाव दिया। उसी का परिणाम 10 अप्रैल, 1875 को आर्यसमाज की स्थापना की। इसके बाद व कुछ पूर्व उन्होंने पंचमहायज्ञ विधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, वेद भाष्य सहित अनेक ग्रन्थों का प्रणयन भी किया, जिसका उद्देश्य सत्य का प्रचार करना व मिथ्या ज्ञान व अन्धविश्वासों को समाप्त करना था। स्वामी जी को अपने इस कार्य में निरन्तर सफलताएँ प्राप्त होती आ रही थीं। अब उनका प्रभाव व सम्पर्क वर्तमान के महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि अनेक स्थानों में हो चुका था। इन सभी स्थानों पर आर्यसमाज स्थापित हो रहे थे। मुख्यतः पौराणिक लोग आर्यमत को स्वीकार कर रहे थे और अन्य मतों के प्रमुख लोग भी वैदिक धर्म से प्रभावित हुए थे। स्वामी जी ने आर्य वैदिक मत के सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए उपदेश व प्रवचनों सहित वार्तालाप व शास्त्रार्थों का भी सहारा लिया था। वह शास्त्रार्थों के अपराजेय योद्धा थे। महर्षि दयानन्द ने अपने कार्यों व प्रयासों से वैदिक धर्म को संसार का प्रथम व उत्कृष्ट सत्य, तर्क व विज्ञान की कसौटी पर खरा एकमात्र धर्म सिद्ध कर दिया था, जिससे सभी मतों के आचार्यों में अपनी निजी स्वार्थों के कारण असुखद स्थिति अनुभव की जाने लगी थी और वह उनके शत्रु बन रहे थे।

महर्षि दयानन्द ने वेदों के मन्त्रों में छिपे रहस्यों को खोला, जिस कारण उन्हें महर्षि के नाम व पदवी से सम्बोधित किया जाता है। उन्होंने अवतारवाद, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, जन्मना जातिवाद, बाल विवाह, सामाजिक असमानता, स्त्री व शूद्रों का वैदिक शिक्षा के अनाधिकार सहित सभी धार्मिक व सामाजिक अन्धविश्वासों का खण्डन किया और सच्चिदानन्द निराकार सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी ईश्वर की वैदिक रीति से सन्ध्योपासना, गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वैदिक वर्ण व्यवस्था, खगोल ज्योतिष, गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार पूर्ण युवावस्था में विवाह, अनिवार्य व निःशुल्क गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था व वैदिक सुरीतियों का समर्थन किया। देश की आजादी में उनका व उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज का सर्वोपरि योगदान है। वह अपूर्व देशभक्त व मानवता के सच्चे पुजारी थे। संसार के सभी मनुष्यों की साँसारिक व आध्यात्मिक उन्नति ही उनको अभीष्ट थी। उन्होंने अपना कोई नया मत व सम्प्रदाय नहीं चलाया, अपितु ईश्वर द्वारा सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को दिये गये वेद ज्ञान का ही प्रचार कर संसार से अज्ञानता, असमानता व भेदभावों को दूर करने का प्रयास किया। वह वेदाज्ञा **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** में विश्वास रखते थे और वैदिक धर्म से बिछुड़े हुए भाई-बहिनों को निष्पक्ष भाव से वैदिक धर्म के वट वृक्ष के नीचे लाने के समर्थक थे। वस्तुतः उन्होंने एक ऐसे विश्व का स्वप्न संजोया था, जिसमें किसी के प्रति किसी प्रकार का अन्याय, भेदभाव और शोषण न हो और सब वैदिक ज्ञान से युक्त शिक्षित, विद्वान्, विदुषी, निरोगी, स्वस्थ व बलवान हों। वह संसार से अशान्ति व दुःखों को समूल मिटाना चाहते थे। उनके शिष्यों पर उनके स्वप्नों को पूरा करने का भार है, परन्तु उन सभी को कर्तव्यबोध भी है? कहा नहीं जा सकता। आत्म चिन्तन और आर्यसमाज के नियम कि मनुष्य को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें, और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग ही आर्यसमाज की उन्नति का मार्ग है। **हम सबको अपना आत्मनिरीक्षण करते हुए इसी मार्ग पर चलना चाहिये।**

महर्षि दयानन्द जी की दो विशेषताओं, उनके सिद्ध योगी और वेद ज्ञान सम्पन्न होने तथा इन विशेषताओं का उपयोग कर संसार के कल्याण की भावना से वेद प्रचार करने का हमने लेख में वर्णन किया है। उनके बाद उनके समान योगी और वेदों का विद्वान् उत्पन्न नहीं हुआ। यदि होता तो विश्व को आशातीत लाभ होता। आशा है कि पाठक इस लेख को पसन्द करेंगे। ❑❑

माई भगवती जी विषयक तथ्य एवं अपेक्षित गवेषणा

(भावेश मेरजा)

अगस्त 2015 में आर्य मन्तव्यों के प्रसार हेतु सक्रिय लोगों ने फेसबुक पर आर्य समाज के ही एक सज्जन का कार्टून बनाकर उसके नीचे लिखा- "राजधानी दिल्ली के रिसर्च स्कॉलर का चमत्कार- माता भगवती विधवा साध्वी नहीं, लड़की थी।" जब इसको लेकर जिज्ञासा की गई तो कार्टून प्रसारक बन्धुओं ने बताया कि इस विषय में 'परोपकारी' पाक्षिक के अगस्त (प्रथम) 2015 के अंक में प्रकाशित प्रा० राजेन्द्र जी जिज्ञासु का लेख दृष्टव्य है।

श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने अपने उपर्युक्त लेख में लिखा है- "एक से अधिक लोगों ने यह प्रश्न पूछा है कि आपने ऋषि जीवन में माई भगवती जी को माई लिखा है। हमने और भी कई लेखों में ऐसा ही पढ़ा है, परन्तु 'दयानन्द सन्देश' दिल्ली में किसी ने उसे 'लड़की' लिखा है। वह 'हरियाणा' ग्राम की थी परन्तु उस लेखक ने उनके ठिकाने का भी कुछ और ही नाम लिखा है। यथार्थ इतिहास क्या है? हमारी विनीत विनती तो यही है कि हमने जो कुछ भी लिखा है इतिहास की प्रामाणिक सामग्री के प्रमाण दकर लिखा है। 'प्रकाश' जैसे प्रतिष्ठित पत्र की फाईल देखकर समाचार की स्कैनिंग करवाकर दिया है। स्वामी श्रद्धानन्द जी उसे माई जी लिखते हैं। अब दिल्ली राजधानी का कोई रिसर्च स्कॉलर अपनी रिसर्च का चमत्कार दिखा दे, तो उसकी मनोकामना को पूरा करने में हम क्यों बाधक बनें। माई जी विधवा साध्वी थीं। लड़की नहीं थीं।"

श्री जिज्ञासु जी के उपर्युक्त लेख पर विचार किया गया। उनके द्वारा सम्पादित एवं अनूदित श्री मास्टर लक्ष्मण जी रचित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्पूर्ण जीवनचरित्र' के दोनों भागों में उनके द्वारा दिए गए माता भगवती विषयक विवरण भी पढ़े। इनसे यह तो स्पष्टतया ज्ञात नहीं होता है कि माता भगवती जी विधवा साध्वी थीं। श्री जिज्ञासु जी ने स्वयं भी इस सम्पूर्ण जीवनचरित्र में कहीं पर भी पर ऐसा विधान नहीं किया है कि वे विधवा साध्वी थीं। 'प्रकाश' पत्र की स्कैनिंग करवाकर दी गई सामग्री में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया कि वे विधवा थीं।

अतः फैसबुक पर कार्टून प्रसारित करने वाले आर्य बन्धुओं से पूछा गया कि- अभी-अभी फैसबुक पर आपने इस नवीन बात का संकेत दिया है कि माई भगवती विधवा साध्वी थी। अतः आपसे निवेदन है कि कृपया माई भगवती विषयक अपनी इस नई जानकारी के सन्दर्भ (स्रोत) विषयक जानकारी प्रदान करें कि जिससे सभी आर्यों को आगे प्रामाणिक लेखन करने में सहायता मिले। उन बन्धुओं से यह भी प्रश्न किया गया कि- क्या आप यह समझते हैं कि 'प्रकाश' पत्र की स्कैनिंग कर दी गई सामग्री में यह कहा गया है कि माई भगवती जी विधवा थीं?

उन बन्धुओं ने उत्तर दिया कि- यह लेख 'परोपकारी' पत्रिका का ही है। आर्य मंतव्य ने नहीं लिखा है। लेखक (अर्थात् श्री जिज्ञासु जी) ने रिफरेन्स दिया है। आपको उस पर शंका है, तो आप उन्हें लिख सकते हैं। अस्तु।

माई भगवती जी विषयक तथ्य-

फिर हमने माई भगवती जी विषयक निम्नलिखित

तथ्यों को संकलित कर प्रकाशित करना उचित समझा-

महर्षि दयानन्द के कई जीवनचरित्रों में माई भगवती के बारे में उल्लेख तो पाया जाता है, किन्तु अति संक्षेप में। पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक ने रामलाल कपूर ट्रस्ट से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ में माई भगवती के सम्बन्ध में अपनी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ दी हैं और उन्होंने यह भी निश्चित किया है कि ऋषि की मुम्बई की अन्तिम यात्रा (1881-82 ई०) के समय माई भगवती की ऋषि से भेंट हुई थी। वह विधवा थीं- इस बात का मीमांसक जी ने कोई उल्लेख नहीं किया है। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने भी ऋषि के जीवनचरित में माई भगवती के बारे में केवल 5-6 पंक्तियाँ ही लिखी हैं। उन्होंने लिखा है- "हरियाणा की एक महिला माई भगवती तरुणावस्था में ही वैराग्यवती हो गई थी।" वह विधवा थी- इस बात का देवेन्द्रनाथ जी ने भी कोई उल्लेख नहीं किया है। पण्डित लेखराम संगृहीत ऋषि के जीवनचरित में माई भगवती का उल्लेख पढ़ने को नहीं मिलता है। मास्टर लक्ष्मण जी आर्योपदेशक रचित ऋषि के सम्पूर्ण जीवन चरित्र (जो अभी 2-3 वर्ष पूर्व ही 2012-13 ई० में प्रकाशित हुआ है) में उसके अनुवादक व सम्पादक श्री प्रा० राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने माई भगवती के सम्बन्ध में 2-3 पृष्ठ का विवरण लिखा है, मगर वे विधवा थीं, इस बात का तो उसमें भी कोई उल्लेख नहीं है। अभी-अभी 'परोपकारी' पत्रिका के अगस्त (द्वितीय) 2015 के अंक में श्री इन्द्रजित् देव जी का माई भगवती विषयक एक उत्तम लेख छपा है। उसमें भी वे विधवा थीं- इस बात का उल्लेख नहीं है।

ध्यातव्य है कि 1986 ई० में एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिका में प्रकाशित एक संशोधनात्मक लेख में एक प्रसिद्ध लेखिका ने 1902 ई० में प्रकाशित सामग्री के आधार पर यह लिखा था कि- माई भगवती का बाल विवाह हुआ था। उस लेख में यह भी लिखा गया था कि 26 वर्ष की भगवती श्वसुर छोड़ अपने घर हरयाणा वापिस आ गई थी। मगर उस लेख में यह नहीं लिखा गया था कि वे विधवा थीं।

प्रमाणों की अपेक्षा-

अतः आदरणीय श्री प्रा० राजेन्द्र जी जिज्ञासु से निवेदन है कि जिस बात का संकेत दिया गया है कि- माई भगवती जी विधवा थीं, इसके एक-दो ठोस प्रमाण उपलब्ध हैं तो कृपया अपनी अनुकूलता से सार्वजनिक करें कि जिससे सभी आर्यों को इस विषय में सही जानकारी मिल सके एवं आगे प्रामाणिक लेखन करने में साहयता प्राप्त हो।

'परोपकारी' के नवम्बर (प्रथम) 2015 अंक में श्री जिज्ञासु जी ने पुनः इस विषय को लेकर अनेक बातें लिखी हैं, मगर इन बातों से यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता है कि माई भगवती विधवा साध्वी थीं। श्री जिज्ञासु जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के आरम्भिक काल के साहित्य में इस बात का प्रमाण होने की बात लिखी है। उस दिशा में प्रयास अपेक्षित है कि जिससे वास्तविक तथ्य की गवेषणा हो सके। इसी बात का प्रमाण जानने की जिज्ञासा को श्री जिज्ञासु जी ने 'परोपकारी' में प्रकाशित अपने लेख में मेरी "हठ" के रूप में व्यक्त किया और इसे "कहां लिखा है- की रट लगाना" लिखा। परन्तु यह प्रश्न तो यथावत है कि क्या माई भगवती जी विधवा थीं?

❑❑

चन्द्र वसु क्यों है? चन्द्रमा पर जीवन की तलाश

(वेदमार्तण्ड डॉ0 महावीर मीमांसक, मो0-09811960640)

मान्या विदुषी उत्तरा नैरूरकर ने "दयानन्द सन्देश" के मई 2015 के अंक में इस विषय पर लेख दिया है। उन्होंने छान्दोग्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् और सांख्यदर्शन के सूत्र 6/56 के आधार पर यह दर्शाया है कि चन्द्रमा पर प्राणियों (मनुष्यों) का वास है। इससे पहले अंक में "सूर्य वसु जिस पर वास किया जाये-कैसे है?" विषय पर लिखा, जो अंक हमें न मिलने के कारण हम नहीं देख पाये। किन्तु प्रस्तुत लेख हमने पढ़ा जिसमें उन्होंने "मान्य विद्वान् अपनी टिप्पणी अवश्य देवें" की बात कही है।

पहले के कुछ और अंकों में भी मैंने विदुषी उत्तरा नेरूरकर के एक-दो लेख पढ़े हैं। मेरे मन में उनके सम्बन्ध में यह धारणा बनी है कि वे एक गम्भीर विदुषी हैं और जो भी लिखती हैं, बड़े प्रमाण और युक्ति-युक्त विश्लेषण के आधार पर लिखती हैं।

प्रस्तुत विषय पर शतपथ ब्राह्मण में भास्कराचार्य के निरुक्तशास्त्र की निर्वचन पद्धति की शैली पर 'वसु' शब्द का निर्वचन देते हुवे लिखा है "एतेषुहीदं सर्वं वसु हितमेते हीद सर्वं वासयन्ते, तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद् वसव इति" (शत.का14)। अर्थात् इन (ग्रह उपग्रह आदि) में ये सब पदार्थ (प्राणी भी) बसते हैं ये सब (पदार्थों प्रजा आदि) को (अपने पर या में) बसाते हैं, क्योंकि ये सबको बसाते हैं अतः इन (ग्रह आदि) को वसु कहा जाता है। ऋषि दयानन्द ने शतपथ ब्राह्मण के इस उद्धरण की सत्यार्थप्रकाश के अष्टम् समुल्लास में व्याख्या करके एक अत्यन्त वैज्ञानिक टिप्पणी करते हुए लिखा है "जब पृथ्वी के समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उन में इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुष्य आदि सृष्टि से भरा हुआ है, तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे?" ऋषि दयानन्द ने चन्द्रमा (आदि) पर प्रजा होने की बात सन् 1875 में कही थी, इसी अभिप्राय की बात (टिप्पणी) आज सर्वप्रसिद्ध सृष्टि विज्ञानवेत्ता स्टीफन्स हाकिङ्ग ने आज से 2-3 वर्ष पहले कही थी कि जब भूमि पर-पृथ्वी पर डी.एन.ए. (प्राणियों की उत्पत्ति का मूल बीज जिससे सब प्राणी पैदा होते हैं) हो सकता है, तो चन्द्रमा पर डी.एन.ए. क्यों नहीं हो सकता? ऋषि दयानन्द ने शतपथ ब्राह्मण के उपर्युक्त उद्धरण को एक प्रश्न के उत्तर में दिया है। प्रश्न था, "सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं, और उनमें मनुष्य आदि सृष्टि है वा नहीं?" इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि ने जो लिखा, वह चन्द्रमा पर मनुष्य जीवन की खोज में लगी आज की अमेरिका की संस्था 'नासा' (NASA) के लिये एक मार्गदर्शक भविष्यवाणी है। ऋषि ने उत्तर दिया, "ये सब भूगोल लोक, और इनमें मनुष्य आदि प्रजा भी रहती है।"

चन्द्रमा पर जीवन की खोज में लगे 'नासा' ने चन्द्रमा पर अब पानी (जल) को खोजा है, जो जीवन का मूल आधार है किन्तु चारों वेदों ने चन्द्रमा में जल की विद्यमानता आज से लाखों (अरबों) वर्ष पहले बतला दी थी।

चन्द्रमा पर जैविक सृष्टि के मूल आधार जल (पानी) के होने के प्रमाण हम विश्व के सब से प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों से प्रस्तुत करते हैं, वेद भी एक से नहीं अपितु चारों वेदों से। मन्त्र निम्न प्रकार से हैं :-

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि। न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो, वित्तं मे अस्य रोदसि।। ऋक्.मं.1 सू. 105, मन्त्र 1।।

सामवेद पू. 5.1.3.9 में यह मन्त्र ज्यों का त्यों दे रखा है। अथर्ववेद का० 18, सू० 4. मं० 89 में भी यह ज्यों का त्यों विद्यमान है। यजुर्वेद में इस मन्त्र का प्रथम चरण ज्यों का त्यों मौजूद है किन्तु दूसरे और तीसरे चरण में अन्तर है। यजुर्वेद में यह मन्त्र निम्न प्रकार से है :-

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णोधावते दिवि।
रयिं पिशङ्ग बहुलं पुरूस्पृहं हरिरेति कनि क्रदत्।।
अध्याय 33. मं.90।।

यहा हमारे मन्त्र का विचारणीय चरण प्रथम ही है जो चारों वेदों में समान रूप से निम्न प्रकार से है:-

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।

चारों वेदों में इस मन्त्र का देवता (वर्णनीय विषय) चन्द्रमा ही है। ऋषि दयानन्द ने अपने ऋग्वेद में ऋक् मं. 1 सू. 105 मन्त्र 1 पर इस मन्त्र के भाष्य में मन्त्र के वर्णनीय विषय की भूमिका बतलाते हुवे लिखा है: "अथ चन्द्र लोकः कीदृश इत्युपदिश्यते" अर्थात् (वह) चन्द्रलोक कैसा है इसका वर्णन (उपदेश) (इस मन्त्र में किया गया (जाता) है। सायण, महीधर, उव्वट, वेङ्काट माधव से ले कर ऋषि दयानन्द तक सभी वेद भाष्यकार इस बात पर सहमत हैं कि इस मन्त्र में वर्णन चन्द्रमा का ही है, जैसा कि मन्त्र के पठन मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्र में सर्वप्रथम प्रारम्भ में पठित "चन्द्रमा" शब्द प्रथमा विभक्ति में है जो आगे पढ़े गये समूचे मन्त्रांश का कर्त्ता है। सुपर्णः (सुपर्णो) चन्द्रमा का विशेषण है जिस का अर्थ है 'सुन्दर पर्णों (पंखों) वाला (यह अलङ्कार है)। अप्सु अन्तरा शब्द अधिकरण में हैं और यह अधिकरण औपश्लेषिक है अर्थात् चन्द्रमा पानी में डूबा हुआ नहीं है, अपितु पानी चन्द्रमा में उपश्लिष्ट है, चन्द्रमा में प्रचुर पानी है या चन्द्रमा में पानी सागर के रूप में सर्वत्र व्याप्त है (यह तथ्य अभी खोज का विषय है)। 'दिवि' शब्द मन्त्र में अधिकरण है और 'धावते' का प्रयोग कर्त्ता की क्रिया के रूप में किया गया है। अब मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार से बनेगा :-

सुन्दर पर्णों (पंखों) वाला चन्द्रमा (जो) पानी में उपश्लिष्ट है, (वह) द्युलोक (आकाश) में दौड़ लगा रहा है। यह तो हुआ शब्दार्थ। व्याख्या बड़ी वैज्ञानिक तथ्यों से भरपूर है।

सब से पहले प्रथम वैज्ञानिक तथ्य तो यह बतलाया है कि चन्द्रमा पानी (जल) से उपश्लिष्ट है। इसके दोनों अभिप्राय हैं कि चन्द्रमा में (चन्द्रमा के अन्दर या ऊपर) पानी है। दूसरा वैज्ञानिक तथ्य वेदमन्त्र यह बतला रहा है कि चन्द्रमा आकाश में न केवल गति कर रहा है अपितु दौड़ रहा है। चन्द्रमा की गति (दौड़) कितनी है, यह आज का विज्ञान जानता है, लिखने की आवश्यकता नहीं है।

गति (चलना या दौड़ना) के लिये या तो पैरों की आवश्यकता होती है या पंखों (परों) की। भूमि या किसी अन्य ठोस आधार पर चलने के लिये पैरों की आवश्यकता होती है किन्तु आकाश में गति (गमन) करने के लिये पैर काम नहीं करते अपितु वहाँ पंख (पर) चाहिये। चन्द्रमा की गति आकाश में होती है। किसी ठोस भौतिक आधार पर नहीं, अतः चन्द्रमा को सुपर्ण कहा। पर्ण का शाब्दिक अर्थ पत्ता भी होता है। जब पक्षी या वायुयान के पंख उड़ने के लिये खुलते हैं तो वे पत्ते की भान्ति दिखायी देते हैं। अतः पर्ण शब्द का प्रयोग वेद में अत्यन्त सटीक है। पर्ण भी सु-सुन्दर या शोभन हैं, ईश्वर की रचना सुन्दर या शोभन ही होती है, जो कभी बिगड़ती या विकृत नहीं होती।

यह प्रथम चरण चारों वेदों में समान रूप से एक ही जैसा है जिस में "चन्द्रमा" शब्द के एकदम बाद "अप्स्वन्तरा" शब्द है जो सर्वप्रथम चन्द्रमा में पानी होने के तथ्य को दर्शाता है, चन्द्रमा में गति की बात इसके बाद कही है। हमारा मुख्य प्रयोजन यहाँ वेदों के प्रमाण के आधार पर चन्द्रमा में पानी दिखलाना है जिस की खोज नासा ने अब की है। और पानी दिखलाने का भी हमारा ध्येय यही है कि जब पानी है तो जैविक सृष्टि (प्राणी) भी अवश्य होंगे। इसी उद्देश्य को ले कर हम ने यह लेख लिखा है।

जैसा हमने पहले कहा और लिखा कि मन्त्र का यह प्रथम चरण चारों वेदों में समान है, केवल यजुर्वेद में इस मन्त्र के अगले चरण भिन्न है, शेष तीनों वेद ऋक, साम और अथर्व में यह पूरा मन्त्र समान है। मन्त्र के इस प्रथम चरण की ही अपेक्षा हमें अपने वर्तमान उद्देश्य के लिये है, शेष चरणों की व्याख्या फिर कभी आवश्यकता होने पर करेंगे, जो ऋषि दयानन्द की प्रस्तावना "अथचन्द्र लोकः कीदृश इत्युपदिश्यते" की पूरी व्याख्या होगी।

वेदों में और भी कई मन्त्र हैं, जो चन्द्रमा में पानी की विद्यमानता का वर्णन करते हैं या संकेत तो अवश्य देते हैं, जिसके कारण चन्द्रमा को वसु कहा गया है। प्राचीन भारतीय ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में भी चन्द्रमा के इस विषय पर बहुत कुछ कहा गया है। किन्तु विस्तार भय से हम और नहीं लिख रहे। विदुषी उत्तरा नैरूरकर के समर्थन में अभी इतना ही पर्याप्त है।

❑❑

आर्यो! सम्भल जाओ अन्यथा पछताओगे
(पं० नन्दलाल निर्भय सिद्धान्ताचार्य, पत्रकार, पलवल, हरियाणा)

हमारा प्यारा आर्यावर्त्त (भारत) किसी समय समस्त संसार का स्वामी था और सकल विश्व में भारत की महिमा के गीत गाए जाते थे। संसार भारत को देवभूमि मानकर इसके आगे शीष झुकाता था, वस्तुतः सारे जगत में आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था तथा सारी दुनियां के नर-नारी प्रातः उठकर परमात्मा से प्रार्थना करते थे कि हे सकल विश्व के रचने वाले जगंदीश्वर! हमें दूसरा जन्म ऋषियों की भूमि आर्यवर्त्त में देने की कृपा करना जिससे हम सब वेदवेत्ता त्यागी, तपस्वी ईश्वरभक्त धर्मात्मा परोपकारी ऋषियों के चरणों में बैठकर वैदिक ज्ञान प्राप्त करके अपने इस मानव तन को सफल करके मोक्ष की प्राप्ति कर सकें। उस समय आर्यों की समस्त संसार में धाक थी। विद्वान कहते हैं कि उस समय भारतवासी देवता माने जाते थे।

इस देश में सत्यवादी हरिश्चन्द्र, अश्वपति, राम, भोज, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य जैसे ईश्वर भक्त धर्मात्मा प्रजापालक सम्राट थे, जो जनता को पुत्र की तरह हृदय से प्यार करते थे। यह क्रम महाभारत काल तक चलता रहा किन्तु महाभारत के युद्ध के पश्चात् यहाँ वैदिक विद्वानों की कमी हो गई और रही-सही हमारी प्रतिष्ठा आपस की फूट ने खत्म कर दी, जिससे यह देश लगभग एक हजार वर्ष तक विधर्मी मुसलमानों और ईसाइयों के आधीन रहा, जिन्होंने यहाँ रात-दिन भारी अत्याचार किए। विधर्मी लोगों ने हमारे धर्मग्रन्थ जला दिए तथा लाखों देशभक्तों की हत्या कराई तथा दुष्टों ने हमारी बहन-बेटियों का धर्म नष्ट किया।

जगतपिता जगदीश्वर की कृपा से इस देवभूमि में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने टंकारा (गुजरात) में कर्षन जी तिवारी (अम्बा शंकर) के घर माता यशोदा बाई की कोख से जन्म लिया, जिनका बालकपन का नाम मूलशंकर था। स्वामी दयानन्द जी ने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास लिया तथा गुरु विरजानन्द सरस्वती से मथुरा नगरी (उत्तरप्रदेश) में वेद ज्ञान प्राप्त किया। स्वामी जी ने गुरु देव की आज्ञा मानकर भारत भर में वैदिक प्रचार किया। इस कार्य को करने में उनके सामने भारी विघ्न बाधाएँ आईं लेकिन वे कभी भी नहीं घबराए। उन पर ईंटें पत्थर बरसाए गए, गोबर-कीचड़ फेंका गया और घातक हमले किए गए। वे हर प्रकार विधर्मियों का डटकर मुकाबला करते रहे।

स्वामी जी ने सबसे पहले पौंगापंथी पौराणिकों पर वैचारिक हमला किया तथा स्पष्ट किया कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हैं। वेदों के विरुद्ध जितने भी ग्रन्थ हैं सब कपोल कल्पित हैं तथा मूर्तिपूजा वेद विरूद्ध है। उन्होंने काशी, मथुरा, हरिद्वार, जगन्नाथ, अमरकोट आदि स्थानों पर जाकर वेद प्रचार करके पाखण्डी लोगों को परास्त किया। इसके बाद मुल्ला-मौलवियों को तथा पोप-पादरियों को शास्त्रार्थ में हराया। स्वामी जी ने अपने महान ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में तेरहवां व चौदहवां समुल्लास ईसाइयों व मुसलमानों को झूठा व पाखण्डी प्रमाणित करते हुए लिखे। बौद्ध और जैनमत का खण्डन किया। उस समय उनसे कोई भी विधर्मी विजय प्राप्त न कर सका। वस्तुतः वे अजेय योद्धा माने गए। संसार उन्हें श्रद्धा से याद करता है।

स्वामी जी ने घोषणा की कि संसार में कर्म ही प्रधान है। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, ईश्वर उसे वैसा ही फल देता है। उन्होंने वेदों का प्रमाण देते हुए ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनादि, अनुपम, सर्वज्ञ, अजर, अमर, न्यायकारी, दयालु बताया तथा दृढ़ता-पूर्वक कहा कि ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है इसलिए उसे जन्म धारण करने की जरूरत नहीं है।

स्वामी जी ने जन्म से जाति को गलत बताया तथा घोषणा की कि जो व्यक्ति ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर वेद-विरुद्ध कार्य करता है वह शूद्र से भी नीची कोटि में चला जाता है तथा संसार में दुष्ट की पदवी पाता है तथा जो विद्वान् ईश्वर-भक्त बन जाता है, वह ब्राह्मण की पदवी पाता है।

स्वामी जी ने गऊ को माता के समान बताया तथा गोकरुणानिधि लिखकर गऊ का महत्व बताया। स्वामी जी ने विदेशी राज्य को दुःखदाई व स्वदेशी राज्य को सुखदाई बताया। उन जैसा त्यागी, तपस्वी, ईश्वर भक्त, धर्मात्मा सदाचारी, तपधारी साधु संसार में अब तक कोई नहीं आया। आर्यो! आपस की लड़ाई बंद करो और महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का और वेद का प्रचार करके संसार का कायाकल्प कर दो अन्यथा पछताते रह जाओगे। अन्त में मेरी सबसे यही प्रार्थना है।

आर्यकुमारो! विश्व में, करो वेद प्रचार।
देव पुरुष बनकर करो, जगती का उद्धार।।
याद रखो संसार में, जो करते शुभ कर्म।
वही पालते हैं सुनो, पावन वैदिक धर्म।।

❑❑

आदर्श माँ एवं पत्नी

(महात्मा चैतन्यमुनि)

वेदों में नारी की महता और प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में अनेक मन्त्र आए हैं। यह एक वास्तविकता भी है कि यदि नारी वास्तव में अपनी गुणवता के अनुसार जीवन यापन करे तो वह अपने-आप में सुमहान् तो है ही। ऋग्वेद के मन्त्रों में एक नारी के उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किए गए हैं-

उदसौ सूर्यो अगादुदग्र मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः।।१।।
अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु ऋतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्।।२।।
मम पत्राः शत्रहणोऽथो मे दुहिता विशद्।
उताहमस्मि संजय पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।३।।
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यमवद्‌दयुमन्युत्तमः।
इदं तदकि देवा असपत्ना किलाभुवम्।।४।।
असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव।।५।।
समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी।
यथाहमस्य वीरस्य विराजनि जनस्य च।।
(ऋ० 10-159-1से6)

मैं स्वयं ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करके प्रभु दर्शन करती हूं और काम-क्रोध आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अन्यों को भी वैसा ही बनाती है, **अहं केतु**-मैं ज्ञानवान् बनती हूँ, **अहं मूर्धा**-मैं अपने क्षेत्र में शिखर पर पहुँचने का प्रयास करती हूँ, **अहं उग्रा**-मैं तेजस्विनी बनती हूँ, मैं **विवाचनी**-प्रभु नाम का उच्चारण करने वाली हूँ और मैं **सेहानाया**-काम-क्रोध आदि शत्रुओं का दमन करने वाली हूँ। वह आगे यह कामना करती है कि मेरे पति भी इसी प्रकार के कार्यों को करने वाले हों। नारी स्वयं इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न होकर न केवल अपने पति बल्कि अन्य परिवारजनों को भी वैसा बना सकने की सामर्थ्य रखती है...। वह आगे कहती है कि मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हों, मेरी पुत्री विशेष तपस्विनी हो, मैं विजयनी बनूँ और मेरे पति को संसार में उत्तम कीर्ति मिले। चौथे मन्त्र में कहती है कि मेरे पति विद्वानों की सेवा करने वाले हों, जितेन्द्रिय हों, दानी हों, उत्तम कर्म करने वाले हों, मन में दिव्य व उत्कृष्ट वृत्तियों वाले हों और मैं स्वयं रोगों व वासनाआं से ऊपर उठकर उन्हें भी वैसा ही बनाऊँ...। अगले मन्त्रों में कहती है- मैं रोगों व वासनाओं का हनन करने वाली होऊँ, सफलता प्राप्त करने वाली होऊँ तथा स्थिर-वृत्ति वाली होकर उत्तम सन्तान का निर्माण करने वाली होऊँ। इन वासनाओं आदि पर विजयी होकर मैं उत्तम सन्तान का निर्माण करूँ...।

अर्थबवेद में घर में उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिए कुछ सूत्र इस प्रकार दिए गए हैं-

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा। सप्तऋषयो... (अ० 11-1-1) अर्थात् घर में अविरल यज्ञाग्नि प्रज्वलित रहे, माता अदीनवृत्ति की हो व दिव्य गुणों को धारण करने वाली हो, स्वाध्यायशील हो तथा बुद्धिवर्धक सात्विक भोजन बनाने वाली हो, उत्तम सन्तान प्राप्त करने की उसके हृदय में प्रबल कामना हो तथा घर के लोग उपासना द्वारा वासनाओं का विनाश करने व उत्तम कर्म करने वाले हों। जिस परिवार का ऐसा उज्ज्वल वातावरण होगा उस परिवार को निश्चित् ही उत्तम सन्तान प्राप्त होती है...। उषा का वर्णन करते हुए सामवेद में पत्नी के गुणों के सम्बन्ध में कहा गया है- **महे नो अद्य बोधयेधो रये दिवित्मती। यथा...** (सा० पू० 5.1.4.3) अर्थात् पत्नी प्रकाश करने वाली हो, उसका हृदयान्तरिक्ष विशाल हो, वह सदा ही उत्तम कर्मों में लगी रहे तथा निरन्तर ही चतुर्दिक विकासशील हो। यजुर्वेद में इस सम्बन्ध में कहा गया है- **इडऽएह्यदितऽएहि सरस्वत्येहि। असावेह्यसावेह्यसावेहि।।** (यजु० 38-2)

पत्नी **मानवी**- मनु की पुत्री अर्थात् समझदार हो तथा उसमे पतिसेवा, सन्तान निर्माण करने की कला, सदा ही मधुर वाणी का प्रयोग करने वाली सदा संवेदनशील, सेवा-भाव वाली तथा साधनामय जीवन वाली हो, वह **यज्ञानुकाशिनी**- अपने जीवन को यज्ञ से प्रकाशित करने वाली हो, **अदिते ऐहि**- (अदीना देवमाता) देवताओं को जन्म देने वाली हो, वह **सरस्वती**- सुशिक्षित व विज्ञानवति हो और **उदारता...** अर्थात् वह उदार मन

वाली हो...

यजुर्वेद में पति-पत्नी के कुछ गुण इस प्रकार बताए गए हैं-

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञँहिसिष्ट मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः।। (यजु० 12-60) **भवतं नः**- पति पत्नी दोनों हृदय से एक-दूसरे के बनें, **समनसौ**- दोनों ही आपस में समान मन वाले हों, **सचेतसौ**- एक ही इष्टदेव अर्थात् उस एक परमात्मा का ध्यान करने वाले हों तथा उनका ज्ञान भी एक सा हो..., **अरेपसौ**- दोनों ही दोषरहित होकर एक-दूसरे के प्रति पतिव्रता व पत्नीव्रती बने रहें..., **यज्ञं मा हिंसिष्टम्**- यज्ञ की कभी भी हिंसा न करें, अर्थात् यज्ञादि कर्मों को कभी न छोड़ें..., **यज्ञपतिम्**- यज्ञ के पति परमात्मा को न हिंसित करें अर्थात् उसकी उपासना कभी न छोडत्रें, **जातवेदसौ**- स्वयं पुरूषार्थ से धन कमाने वाले बनें और **शिवौ भवतम्**- धन कमाकर लोक कल्याणवाले बनें वे केवल अपना ही कल्याण न करें बल्कि सबके लिए कल्याणकारी बनें। धन के मद में आकर किसी का भी अशुभ न करें...। ऐसे दम्पतियों के लिए प्रभु कहते हैं कि **अद्य नः**- आज से तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ... प्रभु का बनने के लिए इसी वेद में आगे कहा गया है-

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे...ध्रुवा सीद।। (यजु० 14-12) हे पत्नी वह **विश्वकर्मा** परमात्म **अन्तरिक्षरस्य पृष्ठे सादयतु** तुझे तभी हृदयान्तरिक्ष की श्री में बिठाऐगा यदि तुझमें आगे के गुण होंगे- **ज्योतिष्मतिम्**- तेरा जीवन ज्ञान की ज्योति से जगमगा रहा हो, **प्राणाय, अपानाय, व्यानाय विश्वस्मै**- प्राणशक्ति के लिए, दोषो को दूर करने वाली अपान शक्ति के लिए और सारे शरीर में व्याप्त होकर नाड़ी संस्थान को उत्तम रखने वाले व्यानशक्ति के लिए सामर्थ हो, **विश्वं ज्योति यच्छ**- सम्पूर्ण ज्ञान देने वाली बन अर्थात् तू स्वयं ज्ञानी बन और सबको उस ज्ञान के प्रसाद को बांटने वाली बन, **वायु ते अधिपति**- तेरा गुण-सम्पन्न पति भी क्रियाशील हो तू उसे उस प्रकार की प्रेरणा व सहयोग आदि दे, **तया देवतया अंगिरस्वत् ध्रुवा सीद**- उस देवतुल्य पति के साथ अंग-प्रत्यंग में रसवाले व्यक्ति की भान्ति तू ध्रुव होकर रहने वाली बन... इसी क्रम में आगे कहा गया है-

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते... यजमानं च सादयन्तु।। (यजु० 15-14) **अधिपत्नी असि**- हे स्त्री! तू घर की अधिक्येन पालयित्री है..., **बृहती दिक्**- यह प्रौढ़ा बृहस्पतिरूप अधिष्ठावाली- बढ़ी हुई ऊर्ध्वा तेरी दिशा है, तेरे जीवन का लक्ष्य सर्वोच्च स्थिति में पहुँचना है, तूने ऊर्ध्वा दिशा के अधिपति बनना है, **ते देवाः विश्वे**- बारह विश्वदेव ही तेरे देव हैं। इन बारह के बारह मासों के नामों से तुझे इस संसार-वृक्ष की वशिष्ठ शाख बनना है, ज्येष्ठ बनना है, कामादि से पराभूत नहीं होना, शुभ उपदेश का श्रवण करना, इसे ही कल्याण का मार्ग समझना, इस पर चलने के लिए कल का प्रोग्राम नहीं बनाना, कामादि को आज ही अभी आत्मावलोकन करके ढूंढ-ढूंढकर मारना है... इस प्रकार अपनी उच्चता का पोषण करना है-यही तेरा ऐश्वर्य है. .. इसके आगे सांसारिक ऐश्वर्य तुच्छ है... ये देव (बारह मास) यही बोध दे रहे हैं और ये ही तेरे **अधिपतयः** अधिष्ठातृरूपेण रक्षक होंगे। **बृहस्पतिः हेतीनाम् प्रतिधर्त्ता**- ऊँचे से ऊँचे ज्ञान का पति गृहपति घर पर आने वाली घातक बातों का प्रतिकार करने वाला है, **त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ**- पुष्टि तथा 33 देवों का धारण ही तेरा प्रभु स्तवन हो, वे **त्वा पृथिव्याम् स्तभनीताम्**- इस शरीर में सेवित करने वाले हों... तेरे शरीर को ये पूर्ण स्वस्थ बनाएं, **उक्थे वैश्वदेवाग्निमारूते अव्यथायै स्तभ्नीताम्**- प्रशंसनीय विश्वेदव (दिव्यगुण), अग्नि (वैश्वानर अग्नि) तथा मरूत (प्राणापान) ये सब पीड़ा के अभाव के लिए तुझे थामें रहें, **शाक्वररैवते** सामनी **अन्तरिक्षे प्रतिष्ठित्यै**- शक्ति को प्राप्त करने की भावना तथा धन और ज्ञानधन को प्राप्त करने की भावना तेरे साम और उपासन हों, ये तेरे हृदय में प्रतिष्ठित हों... जीवन के सिद्धान्त बन जाएँ... कभी अलग न हों, **देवेषु प्रथमजाः ऋषयः त्वा दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु**- विद्वानों में प्रथम कोटि के तत्वद्रष्टा विद्वान्, तुझे ज्ञान के अमुक-अमुक अंश से तथा हृदय की विशालता से विस्तृत जीवन वाला बनाएँ, **विधर्त्ता च अयं च अधिपतिः ते च सर्वे संविदानाः त्वा यजमानं च स्वर्गेलोके सादयन्तु**- घर की आपत्तियों से बचाने वाली ज्ञानी गृहपति और ये आधिक्येन रक्षक 'विश्वदेव' और वे सब ज्ञानी एकमत्यवाले होकर तुझे और यज्ञशील गृहपति को दुःखाभाववाले लोक के ऊपर प्रकाशमय लोक में स्थापित करें।

❑❑

गृह्यसूत्रों की उपादेयता?

(उदयन आर्य, गुरुकुल, करतारपुर, पंजाब)

वेदों की पठन-पाठन परम्परा का निर्वहन करने के लिए गृह्यसूत्रों की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। गृह्य का अर्थ गृहस्थ से सम्बन्धित है। अर्थात् गृहस्थ में क्या कर्म करणीय हैं? क्या अकरणीय हैं? इन सबका विशेष रूप से दिग्दर्शन किया गया है परन्तु हमें इन्हीं गृह्यसूत्रों का विशेष अध्ययन करने पर कभी-कभी वेद-विरुद्ध बातें भी देखने को मिलती हैं। इसके समाधान में शोधार्थी यही कहना चाहेगा कि गृह्यसूत्र में हर बात को प्रमाण रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए। मेरे द्वारा अध्ययन किये जाने पर ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रों में कहीं-कहीं पर गृह्यसूत्रकार तत्कालीन परम्परा का केवल मात्र वर्णन करते हैं तथा कहीं-कहीं अन्य आचार्यों के मतों का भी वर्णन करते हैं। जैसेः- ऋग्वेदीय गृह्यसूत्र में वपा शब्द का प्रयोग मिलता है। व्याख्याकारों ने यहाँ वपा शब्द का अर्थ पशु की चर्बी किया है। पशु की चर्बी को अग्नि में आहुति करने से वायु, जल और वातावरण में जो प्रदूषण होगा, वह यज्ञीय नहीं हो सकता। परन्तु 'वाहवपाम् जातवेदा' इस मन्त्र को समझना जरूरी है। बिना देवता के मन्त्र का अर्थ तर्कसंगत नहीं हो सकता। क्योंकि देवता वर्ण्यविषय होता है। इस मन्त्र का देवता 'जातवेदा' है। इसका अर्थ हुआ-जातानि यो वेद अथवा जातानि व एनं विदुः। निरुक्तकार की इस व्याख्या के अनुसार ज्ञानी व्यक्ति जातवेदा है। उसके लिए वपा के वहन का निवेदन इस वेदमन्त्र में किया गया है।

वैदिक पद यौगिक होते हैं। वपा शब्द पाणिनि व्याकरण के अनुसार 'डुवप् बीज सन्तानें' धातु से बनता है तो उप्यते या यया यस्यां वा सा वपा इस दृष्टिकोण से अन्न अथवा खेत का नाम वपा है। अतः इस मन्त्र में वपा शब्द से अन्न का ही ग्रहण करना उचित है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र में वपा का अर्थ भूमि किया है, जो कि व्याकरण और निरुक्त वेदांगों के अनुकूल है। यज्ञीय पवित्र कर्मकाण्ड के भी अनुकूल है। अतः यहाँ वपा शब्द का अर्थ चर्बी करना कथमपि उचित नहीं हो सकता। आर्च गृह्यसूत्रों में आश्वलायन, सांख्यायन, कौशितकी आते हैं। ध्यातव्य है कि ततकालीन परम्परा में वपा शब्द का अर्थ चर्बी किया गया है और बहुधा गृह्यसूत्रकार चर्बी अर्थ ही स्वीकार करते हैं। मेरा मानना है कि सूत्रकार केवल मात्र तत्कालीन परम्परा का निर्देशन करते हैं न कि प्रमाणित। जैसेः- अन्य उदाहरण गृह्यसूत्रों में वर्णित है।

जो श्राद्ध की पद्धति है, उस पद्धति में कौन-सी क्रिया क्यों की जा रही है। जैसेः- जलपात्र में तिल डालकर ब्राह्मणों के हाथ में देना। उस जल का ब्राह्मण क्या करेंगे? ऐसा कुछ भी उल्लेख नहीं है। गृह्यसूत्रों में कहा गया है कि ब्राह्मणों के कर लेने पर पिण्ड दान करें। प्रश्न है कि पिण्ड क्या है? किस चीज से निर्मित है? पिण्ड का उद्देश्य क्या है? शास्त्रीय परम्परा में पिण्ड शरीर का नाम है? 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' अपने पितरों की आज्ञा में अपने पिण्डों को मनसा, वाचा, कर्मणा, समर्पित कर देना ही वस्तुतः पिण्ड दान है, परन्तु यहाँ इस प्रकार का कोई स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। इसी प्रसंग में आगे लिखते हैं कि पिण्ड से अवशिष्ट अन्न को ब्राह्मणों को ही देना चाहिए। इस वर्णन से सिद्ध हाता है कि सूत्रकार पिण्ड का मतलब अन्न से बना हुआ पिण्ड ऐसा करते हैं।

अब पुनः प्रश्न होता है कि जब पूर्ण भोजन हो चुका हो, तब उन पिण्डों को ब्राह्मण कैसे खायेंगे? पिण्ड **भी 3, 5 या 7 हैं तो भोजन से तृप्त ब्राह्मण इन पिण्डों को किस उदर में सेवन करेंगे? इत्यादि उदाहरणों से** प्रतीत होता है कि गृह्यसूत्रकार अपने मन्तव्य का वर्णन नहीं कर रहे हैं, अपितु तत्कालीन समाज की परम्पराओं का केवल मात्र वर्णन कर रहे हैं। इसी कारण से बहुत सारी अन्धपरम्पराओं का वर्तमान में भी प्रचलन है और यह सब कहीं न कहीं गृह्यसूत्रों को ठीक से न समझने का परिणाम है। अतः गृह्यसूत्रों का अध्ययन करते समय विशेष अवधान देना चाहिए तथा उन बातों को ही

मानना चाहिए, जो वेदानुकूल हों, क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण है तथा अन्य ग्रंथों को वेद के प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है।

यदि कोई ग्रंथ वेदानुकूल है, तो स्वीकरणीय है अन्यथा स्वीकरणीय नहीं है। जिन महानुभावों को इस प्रकार के लेखों पर आपत्ति होती है, उन्हें एक बार अवश्य ही गृह्यसूत्रों को पढ़ लेना चाहिए और अध्ययन करते समय पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि गृह्यसूत्र उपयोगी नहीं हैं। निःसन्देह इनमें अच्छे प्रसंगों का भी वर्णन मिलता है। जैसेः- यज्ञकर्म के समापन पर ब्राह्मणों को भोजन भी अवश्य कराना चाहिए। इस प्रसंग में लिखते हैं कि ब्राह्मण वाणीरूप वय श्रुत, शील और चरित्र गुणों से युक्त होना चाहिए। शाङ्खायन कहते हैं कि इन सब गुणों में भी श्रुत गुण सर्वातिशायी है। इस गुण का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। यहाँ अत्यन्त स्पष्ट है कि वेदविद्याविद् चरित्र से अतिनिर्मल सुन्दर शीलवान् ब्राह्मणपद वाच्य है। ब्राह्मणत्व में जन्म कारण नहीं है। वर्तमानकाल में जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणकुल में उत्पन्न अनधीत व्यक्ति भी जिस तरह से ब्राह्मणपद वाच्य है।

यह शाङ्खायन को स्वीकार नहीं है। जन्म से जाति व्यवस्था के कारण ब्राह्मणत्व प्राप्त व्यक्ति सामाजिक सौजन्य के कारण नहीं बन सकते। अतः वेदविद् ब्राह्मण ही भोज्य सत्कारी है। इस प्रकार से अन्य उदाहरणों का दिग्दर्शन गृह्यसूत्रकार वेदविद् को ही ब्राह्मण संज्ञा देते हैं। परन्तु वर्तमान में जिस तरह से जाति व्यवस्था का स्वरूप दिखाई देता है, वह कहाँ तक उचित है? ऋग्वेदीय गृहसूत्रों में विभिन्न प्रकार के करणीय और अकरणीय कर्मों का निदर्शन मिलता है।

पाद टिप्पणी

1. वाहवपाम् इति मन्त्रे पशुरेव दृश्यते तस्मात् इह दर्शनात्, गोपशु अजो वा पशु स्यात्
कौषीतकि गृह्यसूत्र 03/15/04

2. दृष्टव्य यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्द
अध्याय 35/20

3. वाग्रुपवयः श्रुतशील वृत्तानि गुणाः शाङ्खायनगृह्यसूत्र 1/2/2

4. श्रुतं सर्वानत्येति शाङ्खायनगृह्यसूत्र 1/2/3

5. न श्रुतमतीयात् शाङ्खायनगृह्यसूत्र 1/2/4

❑❑

ओ३म् त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

त्र्यम्बकम् - हे ईश्वर! आप जीवात्माओं के, सत्त्व-रजस्-तमस् प्रकृति के, महत्व से लेकर पूरी सृष्टि के अध्यक्ष, संचालक हैं। तीनों को व्यवस्था में रखते हैं, तीनों के स्वामी हैं।

यजामहे - हम आपकी पूजा करते हैं, आपकी भक्ति करते हैं, आपकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं, ध्यान करते हैं और व्यवहार काल में आपकी आज्ञा का पालन करते हैं। आपके आदेश के अनुसार हम दैनिक कार्यों को करते हैं और यम-नियम आदि व्रतों का प्रयोग व्यवहार में करते हैं।

सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् - हे ईश्वर! आप सुगन्धि और पुष्टि बढ़ाने वाले हैं। संसार में औषधि, वनस्पति, खेती आदि के रूप में हमको भौतिक सुगन्धि का जो लाभ हो रहा है, उन सबको आपने बनाया है और आपके ही बल-सामर्थ्य से इनकी वृद्धि होती है। हे ईश्वर! हम जी रहे हैं, जीवित हैं, हमारा शरीर पुष्ट हो रहा है। हम जो खाते हैं, उनसे आन्तरिक रस-रक्त आदि धातुएँ बनती हैं, इनसे हमारा शरीर पुष्ट होता है तथा बाहर से जल, वायु, सूर्य आदि के द्वारा हमारा शरीर पुष्ट होता है। इस प्रकार पुष्टि के करने वाले भी आप ही हैं।

उर्वारुकमिव बन्धनात् - हे ईश्वर! जैसे खरबूजा पक जाने पर आनन्दप्रद, सुखप्रद हो जाता है, उसी प्रकार आपकी सहायता से हमारा जीवन भी आनन्दप्रद हो जाए और खरबूजा पकने पर जैसे डंठल से स्वतः दूर हो जाता है, बलपूर्वक उसको तोड़ना नहीं पड़ता, वैसे ही आपकी सहायता से हम सब जन्म-मरण के बन्धन से दूर हो जाएँ।

मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् - हे ईश्वर! मुझे मृत्यु से हटा दीजिए और आपको जो नित्यानन्द है, मोक्ष सुख है, उससे हम दूर न हों।

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१२/२०१५
भार- ४० ग्राम

दिसम्बर 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में............................
ग्राम............................
डा0 ....
जिला............................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।